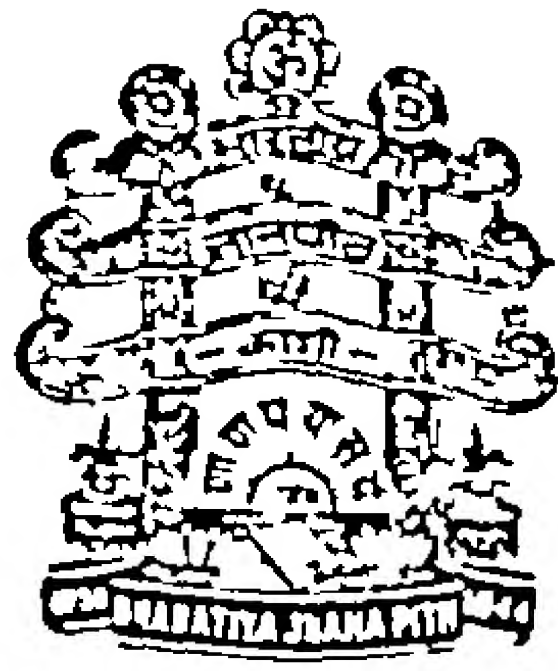


कुछ फीचर कुछ एकाङ्की

भगवतशरण उपाध्याय



भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

(कन्या) चित्रा और (जामाता) रामको
उनके विवाह (८ जून १९५४) की
पाँचवीं वर्षगाँठपर—

वक्तव्य

प्रस्तुत मग्नह सन् ५४-५६मे लिखे मेरे कुछ फीचरो और एकाकियोंका है । इनमेसे अधिकतर इलाहाबाद-लखनऊ आकाशवाणीसे प्रसारित हो चुके हैं । 'महाभिनिष्क्रमण' तो उत्तर-दक्षिणकी सभी भारतीय भाषाओमे अनूदित होकर आकाशवाणीके तेरह केन्द्रोंसे बुद्धकी २५००वीं जयन्तीपर प्रसारित हुआ था । आकाशवाणीके प्रति कृतज्ञ, मैं अब इन्हे एकत्र प्रकाशित कर रहा हूँ ।

मारे फीचर और एकाकी ऐतिहासिक हैं । कुछके कथानक प्राचीन भारतसे सम्बन्धित हैं, कुछके मध्यकालीन भारतसे । एक—जोहान वोल्फ-गाग गेटे—मे प्रसिद्ध जर्मन कविका आशिक जीवन प्रतिबिम्बित है । भारतीय प्रेरणाका प्रयोग उसमे स्पष्ट है । 'गणतन्त्रगाथा'के आठवे दृश्यका श्लोक कालविरुद्ध [कुमारगुप्त प्रथमके कालसे, यद्यपि वह कुमारगुप्त द्वितीयके कालका है, वत्सभट्टीका बनाया] होते हुए भी प्रभावके लिए दिया गया है । इसी प्रकार कई वर्ष पूर्व मृत शिलरको भी नेपोलियन द्वारा वाइमारपर आक्रमणका समकालीन रखा गया है ।

फीचरोंका पूर्वोत्तर क्रम युगपरक नहीं है । आकस्मिक विविधता रुचिकार होती है, इसीसे इन्हे यथास्थान रखा गया है । आशा करता हूँ, पाठकों और दर्शकोंका इनसे कुछ मनोरजन होगा ।

काशी,
१-१-१९५९

—भगवतशरण उपाध्याय

● विषय-क्रम ●

१	सीकरीकी दीवारें	९
२	गणतन्त्रगाथा	३५
३	नारी	५७
४	शाही मजूर	७९
५	ताहि वोइ तू फूल	८९
६	महाभिनिष्क्रमण	१११
७	रूपमती और वाज्रवहादुर	१२७
८	क्राँच किसका ?	१४९
९	जोहान वोल्फगांग गेटे	१६१
१०.	नई दिल्लीमे तथागत	१९३
११	रानी दिदा	२०९
१२	गोषा	२३५

सीकरीकी दीवारे

पहला दृश्य

[ग्रीष्मकी सन्ध्याकी हल्की तालिमा । मुसम्मनबुर्जकी छायामें महले-खासका शीशमहल । उसके नीचे सहनमे फैला अगूरी बाग, सीकरसिक्त अगूरकी वेलें, उनके गुच्छे । मदभरी साँभमे अकुलाया, घटाकी भाँति जहाँनाराके आकाशको घेरे उसका अलसाया अलहड मंदिर यौवन । तपी-सी बैठी जहाँनारा, हल्के-हल्के चँवर झलती बाँदियाँ, सामने सकीना ।]

सकीना—फिर, शाहजादी ?

जहाँनारा—फिर, सकीना, मैंने चिलमन उठा दिया । पर्दा हट जानेसे साँझकी धूप मेरे मुँहपर पड़ी । राजा ठिठका । उसका घोडा, जैसे अलफ ले रहा हो, हल्केसे आगेको उठा । पर, सकीना, वह अलफ न था ।

सकीना—नही, शाहजादी, वह अलफ न था ।

जहाँनारा—अलफ न था वह, सकीना । राजाने घोडेकी चाल जान-बूझकर सम्हाली थी । वही अनेक बार उसने मुझे खड़ी-बैठी देखा होगा, मेरा अन्दाज है ।

सकीना—सही, शाहजादी, दीवाने-आमसे गुजरनेवाले राजा उधरसे ही जाते हैं, मीनारे-अव्वलको दस्तक देते ।

जहाँनारा—घोडा रुका, सकीना । पीछेके सवार भी कुछ रुके, सहमे-सहमे । हवा जैसे थम गई थी, साँझ अरमानोंसे बोझिल थी । [लम्बी साँस लेती है] आँखें चार हुई सकीना । डूबते सूरजकी नुनहरी किरनें अब भी मेरे मुँहपर पड़ रही थी । पर मैं उसकी गरमीका गुमान भी न कर सकी । मेरे सामने ठिठका हुआ वह

घुडमवार था, पीछे उमके बाँके जवान थे । मैंने देखा, मकीना, उमका सीना पहले जैसे धीरे-धीरे तना फिर जैसे बैठ गया । एक बार फिर उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें मुझपर डाली और वह आगे बढ़ा । उमके हल्के वामन्ती माफेकी कलंगी छिप गई, 'वफ्त हवा' की जालीके पीछे ।

सकीना—चला गया फिर राजा ?

जहाँनारा—एकना खतरेमे खाली न था, सकीना । राजा चला गया, लहराती कलंगीके तार चमकाता, अपने बाँके जवानोंको लिए । जवान, जो उस बहादुर कौमके नाज है, हमारी सन्तनतके पाये । [आह भरकर] लहर उठा दी उमने, सकीना, उस राजाने । तातार अब्बल थोड़ी दूरपर खड़ा था, परकोटेके नीचे देखता । मैंने पूछा—'कौन थे घुडसवार, खान ?'—बोला, 'बूंदीका राज-कुमार छत्रसाल ।' [साँस खींचकर] क्या सूरत थी, सकीना, क्या रूप था, क्या तेज, क्या शान ? मिनके मामलुक देखे हैं, लडकी, फरगनाके बेग, दमिश्कके तुर्क, गोरके पठान, पर रूपका वह राज तो कहीं न देखा, जैसे खूबसूरतीको साँचेमे खड़ा ढाल दिया हो । वह तना सीना, वह भरे बाजू, वह लम्बी झुकी नाक, बड़ी-बड़ी बेखौफ आँखें—क्या कहाँ तक बताऊँ, मकीना, वह वेदाग नक्शा । तपे सोनेका वह रंग आँखोंसे उतरता ही नहीं । —सही, शाहजादी, बूंदीका राजा तो गजबका खूबसूरत है । अच्छा, फिर उसे कब देखा आपने ?

• —फिर उस रोज जब दीवाने-आमके सहनमे उड़िया हाथीने भाई-जान दारापर हमला किया था । तू तो मेरे पास ही थी, मकीना । [कुछ सोचकर] नहीं, तू नहीं थी, जुलेखा थी मेरे साथ । हाँ, तो हाथी भडका, दाराके घोड़ेकी ओर बढ़ा । भीड़ छँटती गई । राजा और अमीर तितर-बितर हो गये । पर बूंदीके उम बाँकेने

तलवार खींच ली। हाथी बढ़ा। सांसे थम गई। पल भरमें जाने क्या हो जाता। दरबारमें चीख पुकार मची थी। बादशाह तख्तसे उतर चुके थे, मेरा एक पैर पर्देके बाहर हो चुका था कि उड़िया हाथीका रह-रह कर गुजलक भरता सूंड तलवारके एक झटकेसे केलेके खम्भ-सा कट गया। तभी पसीनेसे लथपथ कुँवरको देखा था, सकीना, दारा और कुँवरके वालिद राजाने जब एक साथ उसे सीनेसे लगा लिया था, जब दोनोंसे मूँठ भर ऊपर उसका सिर काले घुँघराले वालोंसे लहरा रहा था, जब उसके चौड़े ललाटपर धूपने पसीनेके मोती बिखेर दिये थे, उसकी पगडोके फटे बाये कन्धेसे उलझ गये थे।

सकीना—काश कि मैं भी वह नजारा अपनी आँखों देख पाती, शाहजादी !

जहाँनारा—फिर आज देखा, लडकी। आज वापने उसे गद्दी दी। बूँदीका राज उसके बूढ़े वापने उसे आज सौप दिया। देख तो, सकीना, इस कौममें ताजके लिए जग नहीं होते। जिन्दा वाप अपने आप अपनी गद्दी बेटेको सौप देता है, दूसरे बेटे उसे कुरान शरीफके कलामकी तरह मजूर करते हैं।

सकीना—नहीं, शाहजादी, उस कौममें इस तरहके झगडे नहीं होते। कम सुने गये हैं। अच्छा, फिर ?

जहाँनारा—फिर बादशाह आजमने उसे मरोपा वख्शा, खिलअत दी। मैं पर्देके पीछे थी, तख्तके पीछे, बाये वाजू, जब कुँवर नजरका थाल लिये बादशाहके मामने झुका। मेरे पाससे ही वह गुजरा था, सकीना। मेरे इतना पास आ गया था वह कि लगा, अगर हाथ बढ़ा दूँ तो उसे छू लूँगी। इतने पाससे मैंने उसे कभी न देखा था। तभी उसके जिम्मका जादू मुझे बेहाल कर चला। मैं उठ पड़ी। रोजनाराने मुझे उठते देखा। माथेपर छलकी पसीनेकी बूँदें भी शायद उमने देखी। पर मैं रुकी नहीं, रुक न सकी, सकीना।

[जरा रुककर] अच्छा, अब तू चली जा, सकीना । वक्त हो गया है । दरवारे-खास उठ गया होगा । राजा उबरसे अकेला निकलेगा और जब तक दरवारे-खासके बाजूसे घूम दरवारे-आमके सहनमे न निकल जाय, वह अकेला ही होगा । फिर मौका न मिलेगा । सब याद है न ?

सकीना—सब याद है शाहजादी, चली ।

[सकीनाका प्रस्थान]

जहाँनारा—देख, नरगिस, देखती है उन वेलोको ? जब फव्वारोंकी बूँदे हरी पत्तियोंपर पड़ती है तब उनके सिरे झुक जाते हैं, जैसे उन बूँदोंको भी वे न उठा पाती हो । बूँदे अगूरके गुच्छोंसे होकर नीचे गिर जाती हैं जैसे सुन्दर अण्डाकार मुँहसे उतरते ठुड़ीसे टपकते आँसूके कन । और पत्तियोंपर ये बूँदे ठीक शवनम-सी लगती हैं ।

नरगिस—हाँ, शाहजादी, इमपर शामको ही शवनम बिखर पड़ती है । नये आलमका बोझ भारी होता है, जैसे नई मुहब्बतका ।

हाँनार 'नये आलमका बोझ भारी होता है, जैसे नई मुहब्बतका'—सही, नरगिस, उस बोझका उठाना कुछ आसान नहीं, क्यों अमीना ?

अमीना—सही, हुजूर, नरगिस झूठ नहीं बोलती । बीते सालोंकी मुहब्बतका बोझ यह अभी तक ढोये जा रही है । रह-रहकर उसकी याद मँडराती, इसके चेहरेपर उतर आती है ।

जहाँनारा } —[एक साथ]—क्या ? क्या ?
नरगिस }

अमीना—हाँ, देखिए तो, शाहजादी, इसके गाल कानों तक लाल हो गये । कुछ झूठ कह रही हूँ ?

जहाँनारा—सो तो सही, अमीना, गाल तो सच इसके कानों तक लाल हो गये । पर बात क्या है, आखिर सुनूँ तो ।

नरगिस—वात खाक नहीं है, हुजूर। आप भला क्यों इसे उकसाये जा रही है ? अपना गम गलत करनेके लिए मुझे क्यों भाडमे झोके दे रही है ?

जहाँनारा—मेरा गम ? मैं अपना गम गलत कर रही हूँ, हाँ।

[चुटकी काटनेसे अमीनाका चीखना]

अमीना—देखिए, देखिए, शाहजादी, मुई चुटकी काट रही है, जिससे भेदकी बात न उगल दूँ।

जहाँनारा—नरगिस, ऐसा न कर। कहने दे उसे। हाँ, अमीना, रह-रह कर किसकी याद मँडराती, इसके चेहरेपर उतर आती है ?

अमीना—अरे उसी सलोने तातारकी जो कभी खोजेके नामसे हरममे घुस आया था, जिसे नरगिस खाला कहा करती थी।

[तीनोंका एक साथ ठहाका मारकर हँसना]

नरगिस—अपनी भूल गई अमीना, शीशमहलके पिछवाड़ेकी बात, जब मीना बाजार और मच्छी भवनके कोने जैसे काना-फूसी किया करते थे, जब दीवाना बनजारा सँपेरा बनकर आता था, जब आवरवाँके पीछे मछली तडप उठती थी।

जहाँनारा—अरे, वस ! वम ! नरगिस, क्या बकती है ? देख अमीनाके हाथसे चँवर छूट चला। नरगिस, सम्हाल उसे, सहारा दे।

[तीनोंका फिर ठठाकर हँसना]

अमीना—अच्छा ! अच्छा ! शाहजादी ! पर सहारेकी जरूरत मुझे नहीं उसे होगी जिमका दिल 'वफ्त हवा' की जालीके पीछे वासन्ती साफेके सफेद तुरेकी तरह हिल रहा है।

जहाँनारा—[दर्दभरी आवाजमे]—सही, अमीना, सहारेकी जरूरत अभीकी है।

नरगिस—छि अमीना !

अमीना—माफी, शाहजादी। गलती हुई। घुटने टेकती हूँ— [घुटने टेकती है] ।

जहाँनारा—कोई बात नहीं, अमीना। तुमने बेजा नहीं कहा। मजाकमें कहा। पर बात सही है। [साँस खींचकर] है मुझे जरूरत सहारेकी। मेरा सहारा मगर वह गरीब है जो दुनियाके सामने कभी मेरा न हो सकेगा। बेशक उसका राज हरमके भीतर उस धड़कते दिलकी चहारदीवारीमें होगा, जहाँसे मुगलिया खानदानके सख्त कायदे भी उसे नहीं निकाल सकेंगे। काश मैं उन कायदोंको बदल सकती। काश अब्बा उम नीतिको बदलकर उमें अपना लेते, जिससे अकबर आजमने जोबाबाईको पाया था। [लम्बी दर्दभरी साँस लेती है] खैर न सही। पर आज कोई देखे, बूंदीकी रेतका पीया गाही हरमके अगूरी बागमें लग गया है। उसकी जड़ें इस जमीनमें गहरी, बहुत गहरी चली गई हैं, और उन्हे शीशमहलकी शाहजादी आँखोंके पानीसे सींचती है, अपने किमखावी दामनमें मिट्टी भर-भर ढकती है। [लम्बी दर्दभरी साँस] यह मेरा भेद है जो तैमूरिया खानदानके बेरहम काजी भी नहीं जान सकते, नहीं मिटा सकते।

[सकीनाका प्रवेश]

आह ! सकीना, आ गई तू। बोल, चेहरेकी हँसी देग रही हूँ। अल्लाह खुश है, उसे मजूर है।

सकीना—अल्लाह खुश है, शाहजादी, उसे मजूर है।

जहाँनारा—पर बोल, बोल तो।

सकीना—दरवार उठ गया था, शाहजादी, जब मैं वहाँ पहुँची। खानगाना राजाको कुछ सलाह दे रहे थे। दरवाजे बन्द हो रहे थे। फानूसोंकी बत्तियोंकी ओर हाथ लपके ही थे कि मैं मीनारे-अब्वलके गहरे

साथेमे जा खडो हुई । जानती थी, खानखानाके जाते ही राजा दस्तक देने उधर मुड़ेगा । राजा मुड़ा ।

जहाँनारा—फिर ?

सकीना—फिर, शाहजादी, राजा मुड़ा । मीनारको दस्तक देनेके लिए जैसे ही वह झुका, उसने मुझे देखा । कुछ ठिठका, उसके मुँहसे हल्के-से निकल पड़ा—‘कहो देखा है ।’ ‘देखा है’, मैं बोली, ‘परकोटेके पीछे, उसकी बगलमे जिसका नाम कोई नहीं ले सकता ।’ राजाकी आँखें चमकी । बोला—‘परकोटेके पर्देके पीछे, हाँ । और हाँ, उसकी बगलमे जिसका नाम मेरे हियेका भेद है ।’

जहाँनारा—फिर ? फिर ?

सकीना—फिर मैंने कहा—‘वक्त नहीं है ? वस इतना है कि इसे दे दूँ ।’ और मैंने आपका मोतियोका हार उसकी ओर बढ़ा दिया । पल भरमे दिलेर राजाके कन्धे झुक गये, शाहजादी । घुटने टेक उसने झुके सिरके ऊपर अपने हाथ उठा लिये । हार मैंने उसकी खुली हथेलियोपर रख दिया । हारको गलेमे डालता राजा बोला—‘कहना उस देवीमे, जो हार ले चुका हूँ उसे इस मुवताहारके बदले कैसे दूँ ? पर उसे हृदयपर रखे लेता हूँ जहाँसे इसे भीत भी अलग न कर सकेगी । कहना, ‘गँवार राजपूतका कन-कन उस नामको टेर रहा है जो जवानपर नहीं लाया जा सकता ।’

जहाँनारा—सकीना, तू सोना है । अच्छा, फिर ?

सकीना—फिर राजा उठा । चला गया । उसके पैर बोझिल हो रहे थे, मन-मन भरके, जैसे उठते न हो । मैंने उसे अँधेरेमे धीरे-धीरे गायब होते देखा । जैसे सूरज पहाड़के पीछे छिप जाता है, राजा भी दीवारोंके पीछे मुड़ गया । पर जैसे सूरजका तेज डूबकर भी नहीं खोता, राजाका तेज भी उस धुँधलेमे रोशन था ।

जहाँनारा—राजा चला गया, सकीना, पर मीनेमे एक पीत्र लगा गया, जो मेरी तनहाइयोको भरेगा । चल, सकीना, उधर जमुनाके पार पच्छिममे दूर बूंदीकी राहमे राजाके घोडेके खुरोंसे उठी धूलके बादल चमकते चाँदके नीचे देखे ।

दूसरा दृश्य

[शिशिरका प्रभात । आगरेके किलेका शाही महल । जहाँनारा का समृद्ध कमरा, जिसे दुनियाके कलावन्तोंने सजाया है । गंगा-जमुनी शैल्यापर मखमली भारी विस्तर । तकियोंके बीच पड़ी, करवट बदलती जहाँनारा । श्रीमती और नरगिस । द्वार के पास खड़ी सकीना ।]

जहाँनारा—रात कितनी बड़ी हो गई जो काटे नहीं कटती ।

सकीना—मुमीवतकी है, शाहजादी, पहाड हो जाती है । काटे नहीं कटती ।

जहाँनारा—कवकी सोई हूँ, पर जैसे यह रात बीतेगी ही नहीं ।

सकीना—नीद नहीं आई, शाहजादी ?

—नीद तो हर ले गया बियावाँके पार बूंदीको, उमका राजा ।

नारा—उसकी नीद भी हराम हो गई है, शाहजादी । उसके दिलमे भी तडपन है, और थोड़ी नहीं, जो रातके मन्नाटेके साथेमे करवट बदल-बदल उठती है । उसकी रात भी जाड़ेकी है, शाहजादी, और यादभरी ।

जहाँनारा—जाड़ेकी रात, फिर यादभरी । मही कहा, सकीना तूने ।

या खुदा, तूने रात क्यों बनाई ? रातका मन्नाटा तूने दर्दकी टीम और मुहब्बतकी तडपनके लिए क्यों चुना ? पर क्या रात, क्या दिन । यहाँ तो दोनों एक-मे है, दोनोंकी टीम और तडपन एक-गी है । [ज़रा रुककर] अच्छा देख, नरगिस, जग गिरफ्तारोंके

काले पर्दे गिरा दे । अँधेरेमे गमका साया रहता है, और उसमे उसका बेदाग चेहरा साफ चमकता है । गिरा दे पर्दे, और छोड़ दे मुझे अकेली ।

[तीनोंका प्रस्थान]

[ज़रा रुककर] नहीं रुकनेकी, दिनकी दमक है न ? अमीना, उठा दे पर्दे ।

[अमीनाका प्रवेश]

अमीना—अच्छा, शाहजादी ।

जहाँनारा—और सकीना कहाँ गई ? बुला तो उसे ज़रा ।

सकीना—[प्रवेशकर]—यह आई ।

जहाँनारा—इधर आ । बैठ यहाँ, हाँ, ज़रा और पास । और देख, वह अपना गाना तो ज़रा सुना—वह दर्दभरी रागिनी ।

[सकीना गाती है]

जहाँनारा—वन्द कर, सकीना । इस रागिनीने तो जैसे और हूक उठा दी । कौन कहता है कि गानेसे गम गलत होता है ? यहाँ तो याद जैसे और रग-रगमे विध गई । जिस्ममे कही एक जगह तकलीफ हो तो इन्सान सम्हाले भी पर सारा जिस्म ही जो तीरोकी सेजपर पड़ा हो तो वह क्या करे ?

[घबड़ाई हुई नरगिसका प्रवेश]

नरगिस—गजब हो गया, शाहजादी ।

सब एक साथ—क्या हुआ ?

नरगिस—गजब ! धर्मतिके जगमे हाजी जीत गया । शाहजादा शिकोह किलेकी बुजियोंके नीचे है, मलामत, पर थके और बेजार ।

जहाँनारा—और राजा ?

नरगिस—राजा मही सलामत है, बूंदीमें । जब राजपूत वे-अन्दाज गिर गये और शिप्राका पानी उन जवाँमर्दोंके खूनमें लाल हो गया तब महाराजा जयवन्तसिंहने राजाको कुमक लाने भेज दिया ।

जहाँनारा }
सकीना } —शुक्र खुदाका ।
अमीना }

जहाँनारा—परवरदिगार, तेरी रहमत बड़ी है । आज तूने मुझे डूबनेमें बचा लिया । अमीना, हुक्म भेज बूंदीकी राहमें कि राजा बजाय बागियोंकी राह रोकनेके दरबारमें हाजिर हो ।

अमीना—जो हुक्म ।

[प्रस्थान]

जहाँनारा—वे जोधपुर लौट गये ।

[अमीनाका प्रवेश]

अमीना—शाहजादी, बादशाह सलामतका हुक्म है—दरबार दिल्ली चले ।

जहाँनारा—हूँ । खतरेके डरसे दरबार दिल्ली जा रहा है । पता नहीं क्या होगा । सल्तनत खतरेमें पड़ गई । दुनिया उसे हाजी कहती है । हाजी नहीं है वह । उसकी ताकत फरगनाके उजबक तुर्क जानते हैं, जिनके सामने मरे मैदान उसने शामकी नमाज पढ़ी थी, दुश्मनोंके बीच । उसके तेवर कौन सम्भालेगा, खुदा ? कौन उस सल्तनतके अकेले अवलम्ब दाराकी रक्षा करेगा, परवरदिगार ?

[सबका प्रस्थान]

तीसरा दृश्य

[दक्खिनकी ओरसे शत्रुकी सम्मिलित सेनाके आगरेकी ओर बढ़नेकी सूचना । शाहजहाँका दिल्लीसे आगरेकी प्रस्थान । नेपथ्य में जँट, हाथी, घोड़े, पालकीके कहारोकी आवाज । पैदलोंके पैरोकी चाप । सीकरीमें पड़ाव । सीकरीके महलोमें एकाएक साँझके समय कानोको बहरा कर देने वाली आवाजोकी गूँज । कारवाँतरायमें शाही अग्ररक्षक सेना ठहरी है । सामने खुले मैदानमें बूंदीके छत्रसालका डेरा है । खास महलके साथेमें त्वावगाहमें शाहजहाँ आराम कर रहा है । पास ही तुर्की बेगमके कमरेमें जहाँनारा और उसकी वाँदियाँ ।]

सकीना—शाहजादी, राजा पहुँच गया है । उसके घुडसवार पहलेसे ही डेरा डाले पड़े हैं । बूंदीका बहादुर रिसाला आगे बढ़ चुका है । राजाको हमारे यहाँ आनेकी खबर थी ही, रिसालेकी एक टुकड़ी लिये वह यहाँ आ पहुँचा ।

जहाँनारा—तू मिल सकी राजासे, सकीना ?

सकीना—हाँ, शाहजादी । दरवारमें हाज़िर होनेका हुक्म हुआ था, उसी हुक्मके साथ मैं भी राजाके सामने हाज़िर हुई । राजाने देखा, पहचाना । पुराना धाव जैसे खुल पड़ा । पर अपनेको सम्हाल कर वह खेमेके बाहर निकला, पूछा—‘शाहजादीकी क्या आज्ञा है ?’ ‘ठीक समझा आपने । वहीसे आई हूँ ।’ मैंने कहा, फिर पूछा—‘क्या जोधाबाईके महलमें आज आधीरातको मिल सकेंगे ?’ राजा बोला—‘निश्चय ।’

जहाँनारा—फिर, सकीना ?

सकीना—फिर मैं चली आई, शाहजादी । दरवारका हुक्म जल्दी हाज़िर

होनेका था । राजाको जल्दी थी पर पल भरके लिए जैसे उसे दुनियाका गुमान न रहा, दरवारका भी नहीं ।

जहाँनारा—राजा कैसा लगता था, सकीना ?

सकीना—कुछ चिन्तित जान पड़े, शाहजादी । शकल अँवरेमे कुछ माफ न दीख सकी । बाहर चाँदनी थी पर पेडके मायेमे बस उनकी फैली छाती और घुँघराले बाल देख सकी, गो कानके मोती अँवरे में भी रह-रहकर दमक उठते थे । राजाको एक झलक खेमेकी रोगनीमे भी दीख गई थी, पर वहाँमे जल्द अँवरेमे हट आना पडा था । रोगनीमे चेहरा कुछ उतरा मालूम पडा ।

जहाँनारा—राजा चिन्तित है, सकीना । उसके सामने एक मुसीबत नहीं, कई हैं । सल्तनतके उखडते हुए पाये सम्हाले नहीं सम्हालते । फिर भीतरका दर्द बराबर बढ़ता गया है । राजा, मच मानो, अपनी मुसीबतोमे तुम तनहा नहीं हो ! [आह भरना]

सकीना—शाहजादी, अगर आज हम मुसीबतके सायेमे न मिलते तो मुबारकवाद देती । आज जो कही शाहजादाका मितारा बुलन्द होता ।

जहाँनारा—आह, सकीना, आज दाराका मितारा जो कही बुलन्द होता ।

—खुदाकी रहमत फलेगी, शाहजादी । जो इतना दिलेर, इतना इन्साफपसन्द है उसका बाल बाँका न होगा । हमारी हजार मिन्नतें उसके साथ हैं, हजार-हजार दुआएँ हमारे शाहजादोको उम्र और इकबाल बढ़ाएँगी ।

जहाँनारा—तेरे मुँहमे घी-शक्कर, सकीना । तेरी जवान मही उतरे ! पर मैं जब आगेकी सोचती हूँ तब जैसे मेरे अरमानोकी दुनिया त्रिलोक उठती है । पानीमे बाग लग जाती है । कैसे समझाऊँ दिदलो ?

सकीना—समझाओ, शाहजादी । तुम इस जमीनकी नहीं हो । तुममें फरिश्तोकी अक्ल और जवाँमदोंकी हिम्मत है । तुम कही अपना

साहस न खो देना । वुजुर्ग बादशाह सलामतकी बस तुम्ही सहारा हो, दाराशिकोहकी तुम्ही आड हो, राजाकी तुम्ही साँस ।

जहाँनारा—हिम्मत नहीं हारूँगी, सकीना । इस खानदानमे जब पैदा हुई हूँ तब इसके सुख-दुख दोनोंको हाथ बढाकर लेती हूँ । हाँ, जानती हूँ कि अब्बाकी बुढ़ीतीका सहारा मैं ही हूँ । भाईकी आड भी मैं ही हूँ, इस बहादुर राजाके दिलका भेद भी । या खुदा, मुझे ताकत दे कि मैं तीनों जिम्मेदारियाँ निभा सकूँ । [साँस भरकर] अच्छा, सकीना, तैयारी कर । शाम गहरी हो चली, पडावोकी आवाज धीमी पडने लगी । थोड़ी देरमे जोधाबाईके महलकी ओर चलेगे ।

सकीना—जो हुक्म, शाहजादी ।

[चाँद डूबा नहीं पर सीकरीकी दीवारोके पीछे जा छुपा है । किलेके महलोपर हल्की छाया है । दूरी अँधेरेका सहारा हो गई है । अकेला राजा जोधाबाईके महलकी सीढियोपर खड़ा है]

[जहाँनाराका प्रवेश, सकीनाके साथ]

सकीना—शाहजादी, सीढियोके पास, ये रहे बूँदीके महाराज ।

राजा—देवि, छत्रसाल उपस्थित हैं । अभिवादन । [झुकता है] स्वागत ।

जहाँनारा—प्रसन्न हैं, महाराज ?

राजा—अभीष्ट उपस्थित होनेपर जितनी प्रसन्नता साधकको होती है, उममे कम मुझे नहीं, देवि । अहोभाग्य जो आपके दर्शन हुए ।

जहाँनारा—मिलकर प्रसन्न हुई, महाराजा ।

राजा—आप चिन्तित हैं, शाहजादी ।

जहाँनारा—विकल हूँ, महाराज । वित्त अस्थिर है । पर भला केवल सुख किन्का रहा है ?

राजा—जानता हूँ, देवि, सल्तनतका वोझ कन्वोपर है। हिन्दुस्तानकी प्रजा इन्ही कन्वोकी ओर देखती है।

जहाँनारा—सल्तनतका वोझ, महाराज, ये कमजोर कन्वे नहीं सम्हाल सकते। उसका भार उन कन्वोपर है जिनपर फरिश्तोको शर्मा देने वाला महाराजका मस्तक है।

राजा—दुनिया जानती है, शाहजादी, कि दिल्लीका तख्त उस कण्व नारीकी मेधापर टिका है जिसका आसरा बादशाहको भी है, उसका अवलम्ब शाहजादा दाराको भी, और ।

जहाँनारा—कहे चल, महाराज।

राजा—नहीं कहूँगा, देवि, यह अपनी बात है और अपनी बात न कहूँगा। इस कठिन कालमें पासकी सीमापर उठते-मँडराते मेघोकी श्यामल छायामें अपनी बात कहना स्वार्थ होगा।

जहाँनारा—सच महाराज, सरहदपर खतरेके बवडर जो सल्तनतको निगल जानेके लिए मुँह बाये बड़े आ रहे हैं। मँडराते मेघोके नीचे कून्के डके और मातमके वाजे बज रहे हैं। दिल बैठ जाता है। क्या होगा, महाराज ?

राजा—क्या होगा, सो नहीं कह सकता, शाहजादी, पर क्या करूँगा, वह जानता हूँ।

जहाँनारा—वह तो मैं भी जानती हूँ, महाराज। जानती हूँ, राजपूत गूतकी होली खेलता है। उसके लिए जग त्योहार है, मौन एक बहाना। पर मैं पूछनी हूँ क्या हथ्र होगा इस सानदानका जिसके शाहजादे एक दूसरेके खूनके प्यामें हो रहे हैं ?

राजा—नहीं जानता, देवि, सो नहीं जानता। वम एक बात जानता हूँ—यह तलवार है जिसे सल्तनतकी रक्षाकी शपथ लेकर धारण किया है, इसे बेआबू न होने दूँगा। तलवारमें बढकर राजान के लिए दूसरी कोई चीज नहीं।

जहाँनारा—जानती हूँ, महाराज ! यह कील नहीं, स्वभाव है । राजपूतके दायरेमें जो आते हैं उनका महारा भी उसकी यही अचूक तलवार होती है । उसी तलवारको अपना करने आज आई हूँ ।

राजा—वह तलवार कब अपनी न थी, देवि ? कब वह उस अवसरकी प्रतीक्षामें न रही जब आपके काम आकर निहाल हो जाय ?

जहाँनारा—वह पूछनेकी बात नहीं, महाराज ! पर आज एक बात कहने आई हूँ । खामकर आपमें । इस छिपते चाँदके सायेमें, इन जोधा-वाईके महलकी पवित्र दीवारोंके सायेमें, भोगती रातके सन्नाटेमें कुछ कहने आई हूँ ।

राजा—कहे देवि, छत्रसाल उन्मुख है ।

जहाँनारा—आज मैं आपमें नहीं हूँ, महाराज ! मुझे दुश्मनकी बहादुरी और उनकी ताकतका डर नहीं है, और न इसका कि वावरकी बनाई इमारतकी नींवकी ईंटे बिखर जायेंगी । ना, कत्तई नहीं । बात कुछ और है जो मुझे बेदम किये दे रही है । कैसे कहूँ ? बात जवानपर आती-आती लौट जाती है । अच्छा, एक बात बताओ, राजा !

राजा—पूछे शाहजादी ।

जहाँनारा—क्या सारे राजपूतोंको अपने कौलका अभिमान है ? क्या धर्मालकी हार आगेकी मृगीवत खोलकर नहीं रख देती ? क्या जोधपुरकी रानीने जो जमवतमिहके सामने किलेके दरवाजे बन्द करा दिये थे, उनके कुछ भाने नहीं ? मैं जो बात कहना चाहती हूँ उसे कह नहीं पा रही हूँ, महाराज, पर पूछती हूँ क्या दाराका भविष्य उस आचरणमें नहीं बँधा है ?

राजा—अच्छा होना, शाहजादी, आज आप उस बातको न उठाती । अनेक-अनेक राते मारवाड़-नरेशके उस आचरणको गुनती रही है । उनका उत्तर वास्तवमें वही है जो मेवाटकी लाज उस जोध-

पुरकी रानीने अपने आचरणमे दिया । और आगे मुझे कुछ कहने-पर वाध्य न करे, देवि ।

जहाँनारा—नही, वाध्य नही करूँगी । वस इशारा भर करना चाहती थी कि अपनी दीवारकी डंट ढीली हो रही है, राजपूतके ईमानमे बढ़ा लगनेवाला है । सूरजमे कालिख लग जायगी, महाराज, अगर राजपूतकी तलवार घुटनेपर टूटे ।

राजा—छत्रमाल राजनीति नही जानता, देवि । न पिछले आचरणको देखकर अगली घटनाओको समझनेकी ही उममे शक्ति है और न ही उस आचरणको याद करने-गुननेकी अब क्षमता । पर हाँ, जो जोधावाईके महलकी इन पवित्र दीवारोको छूकर, उम डूबते चाँदको साक्षी कर वह प्रण करता है कि उसकी तलवार घुटनेपर न टूटेगी । काश, देवि, मैं शिप्राके तटपर रहा होता ।

जहाँनारा—जानती हूँ, महाराज, तब पाँसा पलट जाता । तब हाजीकी दिलेरी भी बूँदीकी धारमे डूब जाती, पर उस बीती बातको जाने दो । और याद रखो कि वेशक मैं चाहती हूँ कि सूरजमे कालिख न लगे, कि राजपूतकी तलवार घुटनेपर न टूटे, पर उमके नतीजेसे काँप उठती हूँ, राजा । और यह माव कि राजपूतकी तलवार घुटनेपर न टूटे और राजपूतकी उम्र लाग बरस हो, मेरी छातीकी घडकन है ।

राजा—न कहें, शाहजादी, रहने दें, घाव खुल जायगा ।

जहाँनारा—राजा, आज अगर सत्तनतका खतरा सामने न होता तो अपनी बात कहती ।

राजा—न कहें, देवि, वह बात । उसका बोझ बाहरकी थोड़ी हकी टमा न उठा सकेगी । हृदयकी पावन दीवारे अपने धेरेमे मन्त्रों भाँति उसे रखेंगी । उमी मन्त्रकी सौगन्ध याकर, उमी बातकी माखी

कर, छत्रसाल आज नतमस्तक होता है, अपने प्राणोंसे अजलि भरकर उसे भेटता है ।

जहाँनारा—वस-वस महाराज, उन्हें इस प्रकार दान करनेका हक आपको नहीं । [काँपती आवाज़में] वे सल्तनतकी धरोहर हैं, मेरे अरमानोंके देवता ! एक बात कह दूँ—बादशाहको अपने तख्तताऊसपर इतना नाज़ नहीं जितना तुम्हारी आनपर है, तुम्हारी तलवारके पानीपर ।

राजा—वह तलवार, शाहजादी, उस नाज़ और उस विश्वासको किसी अशमे झूठा न करेगी ।

[क्षणभर चुप्पी]

जहाँनारा—अगला मोर्चा कहाँ है, राजा ?

राजा—अगला मोर्चा आगरेके पास ही होगा, शायद सामूगढमें । दकनकी सेनाएँ मजिलपर मजिल मारती आगरेकी ओर बढ़ी आ रही हैं ।

सामूगढ राजा भी विश्वासके बिन्दु पर है । मेरे और मेरे साथी

वयानाके किलेमें डेरा डाले पड़ी हैं, समरके लिए कठिबद्ध । मैं पौ फटते कूच कर दूँगा ।

जहाँनारा—सामूगढ बहुत पास है, राजा ! गुजरात और दकनकी शामिल फौजे अपनी मजिलें तै कर रही हैं । मुराद और हाजी दोनों गजबके लड़ाके हैं, गजबके मक्कार । और हाजी तो शैतानकी हमरत बनकर उतरा है । उधर शुजा बगालसे रातदित बढ़ा चला आ रहा है । सुना है चुनार तक आ पहुँचा है । खुदा ही खैर करे ।

राजा—बतरा बड़ा है, मैं इसमें इन्कार नहीं करता । अपनी हालत नाजुक है, इसमें भी नहीं । पर प्रयत्न करना अपना काम है । प्रयत्नसे मुँह मोड़ना कायरता है । लड़ाईके मैदानमें उनसे सामना होगा जो

मल्लनतके ताजपर आँख लगाये है। ग्राहजादी, मुराद और गुजा वीर है, बाँके लडाके है, पर डर उनसे नहीं है। जवनक गगवते दीर उनसे नहीं छूटने, उनसे कोई खतरा नहीं। खतरा उससे है जो धर्मके नामपर रक्तकी नदी बहाना और उसे लाँवता है।

उसका मुकाबला जरा तीखा होगा।

जहाँनारा—हाँ, उसका मुकाबला जरा तोखा होगा। उसके सामने रोजनारा-का पलड़ा भारी है। रोजनारा और हाजी बाब्रकी इस इमारत-की जड़ खोदनेपर आमादा है। हाँ, और मोद दे उसकी जड़, मैं उससे भी नहीं डरती। दारा और सिकन्दरकी मल्लनते भी आज बियाबों-में खो गई है, उनकी जान आज मुननेकी कहानी बन गई है। चगेज और तैमूरकी मल्लनते भी आज बीने मपने बन गई है। सच, मुझे मल्लनतको कायम न रखा सकनेका इतना मलाल नहीं जितना इस बातका है कि मस्कारीका दामन बढना जा रहा है। और शायद जीन उसीकी होगी, राजा, मेरे अल्लम्य तुम हो। पत खना, राजा।

राजा—राजपूतके पास उस मस्कारीका जवाब नहीं है, ग्राहजादी। उसकी परम्परामें अल्लाउद्दीन और हाजी नहीं आते, कुम्भा और साँगा आते हैं, जो आनपर मिट जाते हैं। जाना हूँ, जिस प्रणाली इन पवित्र दीवारोंको मुनाकर घोषित किया है, उसे पूरा करेगा। सामूगढ़पर ही शायद घमासान होगा। वही राजपूती जानकी परीक्षा है। पठानोंने घरकी इस लडाईकी आउमें मुकुजईया इलाका ले लिया है। पजाब वेदम है, बगाल आगाद हो चला है। उनका हाकिम गुजा अपनेको ग्राह गेशन कर चला है। मुराद अपनी गुजराती सेनाके सामने कबका रणतिरक ल चला है। पर दाव लगानेवाला हाजी है। जाना हूँ, जीनरी आगा नहीं दिलाता, देवि, जीनका फैसला वही औरंग होता है, पर पर

विश्वास दिलाता हूँ कि सामूगढ़ धर्मात्त नहीं बनने पायगा । लोहे-से लोहा बजेगा, राजपूतकी बांह न बकेगी । जाता हूँ, दाराका झण्डा मुझे भी उठाना है और जो बचा रहा तो शायद फिर कभी यह आवाज मुननेकी मिले ।

जहाँनारा—जाओ, राजपूत । जाओ, राजा । तुम्हारे प्राणोंकी रक्षा मेरी दुआएँ करेगी । जाओ, सब कुछ मिट चुका है, जो है, खतरेमें है, पर इमान अब भी अपनी आनपर डटा है, अपने कौलपर कायम है—यह कुछ कम मन्तोपकी बात नहीं ।

[प्रस्थान]

चौथा दृश्य

[आगरेका किला । शाहजहाँका शीशमहल । बाहर दरबारे-शामके सामने बड़े मैदानमें घोड़े-हाथियोंका जमघट । सामूगढ़के युद्धमें दाराशिकोह और राजपूतोंकी पराजय । भागा हुआ दारा । दरबारे-खासमें शाहजहाँ खड़ा है, जहाँनाराके आगे । सामने दारा, सरदारोंके साथ]

दारा—सब खो गया, जहाँपनाह । मारा खत्म हो गया ।

शाहजहाँ—सब खो गया, दारा, मन्तनत खाकमें मिल जायगी । हाजी, मुराद और गुजाको भी कुचल देगा । बेटा, अब क्या होगा ?

दारा—नहीं जानता, अब्बाजान, अब क्या होगा । खुदा समझेगा जालिमोंमें । जहाँ तक फर्ज था, किया, अब बियाबोंकी खाक छानने चलता हूँ ।

शाहजहाँ—बेटे, इतनी बड़ी मन्तनतमें क्या तुम्हें पनाह नमीव न होगी जो दर-ब-दर फिरने जा रहे हो ? ठहरो, दारा, शाहजहाँका दूलापा अभी बृजदिलीवा बायल नहीं हुआ । आने दो उन्हें ।

एक बार फिर जगमें उतर्नंगा । फरगना और काबुलकी तलवार
एक बार फिर आगरेके हरममें चमकेगी ।

दारा—अव्वा, उतावले न हो । सब कुछ खोकर भी अभी कुछ बाकी है ।
राजपूतोंके भूरमा अभी मल्लनतको उखडने न देगे । पजाब और
मारवाड, सिन्ध और पहाड अब भी हाथमें है । जाना हूँ एक बार
और किम्मत आजमाने । अगर जिन्दा रहा तो लीटकर कदम
चूमूँगा । अल्बिदा ! [शाहजहाँकी ओर बढ़कर घुटने टेक देता
है । शाहजहाँ उसके सिरपर हाथ फेरता है ।]

शाहजहाँ—जाओ, दारा, सब कुछ मेरे जीते-जी ही लुट गया । आज
गायद इसी घडीमें इस अपने ही बनाये महलका एक नापा अपना
नहीं, महारा लेनेको एक खम्भा तक नहीं । जाओ, बंटे, कोजिश
करनेमें न चूको । अल्लाह तुम्हारी मदद करेगा । अल्बिदा !

[दारा और शाहजहाँका गले मिलना]

दारा—[वहनसे] वहन जहाँनारा, दारा तुम्हारी हजार-हजार मेहर-
वानियोंका कर्जदार है । हजार-हजार शुक्रिया । बियाबाँमें लीटकर
मिलूँगा । अल्बिदा ! [गलेमें लगा लेता है ।]

६० ॥१—[भर्राई आवाजमें] भाई, जवाँमर्द दाग, अल्बिदा ! जाओ
भाई, खुली हवामें जाओ । आगरेको दीयारोंपर गैतानका माया
पड गया है । दूरके जंगल और रगिस्तान अब भी आज़ाद हैं,
आज भी उनपर सुदाका नूर बरस रहा है, उनकी आज़ाद हवामें
साँम लो । हमें खुदाकी रहमत और हमारी किम्मतपर ओठ
दो । जाओ, भाईजान, वहनकी हजार दुआएँ तुम्हारी र ॥
करेंगी । बचपनकी हजार माँने तुम्हारे माथ जायगी, अल्बिदा !
हुनर और तलवारकी हदे नहीं होंगी, दारा, जाओ गुले हवामें
उन्हें परखो । अल्बिदा !

[दाराका प्रस्थान]

शाहजहाँ—[बैठता हुआ] जमाना बदल चला है । किस्मतने करवट ली है । अब्बा आजमके आखिरी दिन इन्ही हाथोंने सदमेमे डाल दिये थे, अब शायद ये खुद दूसरोका आसरा करनेवाले है । पर न, मक्कारोकी हुकूमत मुझे मजूर न होगी । या खुदा, क्या होनेवाला है ? इसी अपने बनाये हरमसरामे मोती मस्जिदकी इन्ही बुर्जियोके नीचे, क्या गोशमहलकी इन्ही दीवारोके भीतर शाहजहाँको कैदके दिन काटने होंगे ? ताजकी मीनारो ! अपने शाहजहाँको अपने सायेमे बुला लो, जगह दो !

जहाँनारा—अब्बाजान, वक्त इम्तहानका है, हिम्मत न हारे । आने दकन और काबुल जीते है । दुनिया कभी अपनी थी, आज नहीं है । पर सिर और हिम्मत अपने है, नहीं झुकेगे । चले, अन्दर चले । दाराके हीसले आज भी सितारोकी बुलन्दीपर है, उसके राजपूतो-मे आज भी गजबकी वहादुरी है । किस्मत फिर करवट लेगी, जहाँपनाह !

[शाहजहाँ जाता है । सकीनाका प्रवेश]

सकीना—[जहाँनाराके कानमे दर्दके साथ] शाहजादी, बूंदीके रिसाले-का एक सिपाही हाजिर है । राजाका पैगाम लेकर आया है । आपमे ही कुछ कहना चाहता है । घायल है ।

जहाँनारा—लाओ उसे सिपाहबुर्जकी सीढियोपर । मैं उसीके साये बैठता हूँ । [जहाँनाराका सिपाहबुर्जके नीचे बैठना । सकीना-का दाहर जाकर फिर राजपूत सैनिकके साथ प्रवेश कर सीढियोपर रुक जाना ।]

सिपाही—[मस्तक झुकाता हुआ] ताब नहीं है, शाहजादी, महाराजका नेवक घायल है ।

जहाँनारा—सकीना, हकीम, जराह !

सिपाही—[बात काटते हुए] नहीं शाहजादी, अब हकीमके किये कुछ न होगा । वम मुन भर ले, समय नहीं है ।

जहाँनारा—वोलो, जवाँमर्द, राजा कहाँ है ?

सिपाही—महाराज वहाँ है, शाहजादी, जहाँ राजके लिए भाइयोमें रक्तपात नहीं होता, जहाँ बेटा बापकी मृत्युके लिए प्रार्थना नहीं करता, उसके रक्तका प्यासा नहीं होता, जहाँ केवल मंत्र और शान्ति है ।

जहाँनारा—हूँ । [भरई आवाजमें] राजा, तुमने अपना कील पूरा किया ।

सिपाही—मामूगढकी लडाई कुछ साधारण न थी । भयानक समामान हुआ । [दम लेकर] और बूँदीका रिमाला घिर कर भी लटका रहा । महाराजने विरकर भी अमुर-विक्रममें युद्ध किया । शत्रु उनकी वीरता देख-देखकर दग रह गये । पर मीन मिग्गर नाच रही थी । पहले भाला टूटा, फिर तलवार टूटी, अन्तमें शत्रुके भालेने उन्हें स्वर्ग पहुँचा दिया ।

जहाँनारा—हाय !

ही—[दम लेकर] गिरते-गिरते उन्होंने एक मुताहार निहाला और मुझे देते हुए कहा—‘इसे शाहजादीको देना और कहना कि छत्रमालके कंधोंपर अब गर्दन नहीं रही जहाँ वह इसे वापस करे ।’ ‘इसे स्वीकार करे, शाहजादी, अब मैं चला । [टुकड़ा जाता है]

[जहाँनाराका हार ले लेना । हार देते-देते राजपूतजा गिरकर दम तोड़ देना]

जहाँनारा—राजा, तुम मूर्ख हो, फरिश्तोंमें उंचे, जम्पूनाके पानीमें पात । छत्रमाल । इस मानननयो वह शाहजादी, जिसने दामावर सिंघी मर्दका माया भी नहीं पटा, तुम्हारी पूजा करती है । उग्रा सिंघ

का जर्ज़रि तुम्हारा शुक्रगुजार है। उसकी रग-रगमे तुम्हारे नाम-
की खानी है। जहाँनाराके छत्रमाल, तुमने अपना कौल
निभाया, जहाँनारा भी अपना वह कौल निभायगी, जो किसीने
न सुना। [दम लेकर] मुन ले, सकीना। सुनो, सूरज और
चाँद, जमीन और आसमान—जहाँनारा छत्रसालकी है, वूँदीके
जवामर्द राजाकी, और जवतक वह साँस लेती है, उसकी साँसमे
ताजाके नामकी पुकार होगी। जहाँनाराके दिलमे राजाका वास
होगा और उस दिलकी मज़ार ताजाके रोजेसे कही पाक होगी।
उसकी सदाएँ ताजाकी बुजियोसे कही ऊँची उठेगी। अल्विदा,
राजा। अल्विदा मेरे छत्रसाल।

[यवनिका]



गणतन्त्रगाथा

पहला दृश्य

वाचिका—न सा सभा यत्थ न सति सतो न ते सतो ये न भणति धम ।

राग च दोस च पहाय मोह धम भणता न भवति सतो ॥

वाचक—साधु ! साधु ! देवि, साधु ! जातककी अत्यन्त प्राचीन गाथा है

यह—वह सभा नहीं जहाँ मन्त न हो, वे सन्त नहीं जो न्यायसगत वात न कहे । जो राग-द्वेषादि छोड़कर न्यायसगत धर्मकी वात कहते हैं, मन्त वे ही हैं ।

वाचिका—उन्ही मन्तोकी वाग्मितासे हमारी समिति और सभा मुखरित हुई थी हमारे गण और मघ, श्रेणी और पूग, वर्ग और निकाय, हमारी लोक-सभाके सुदूर पूर्ववर्ती ।

वाचक—उम परम्पराके प्रतीक थे हमारे अन्धक और वृष्णि, शाक्य और कोलिय, लिच्छवि और विदेह, मल्ल और मोरिय ।

वाचिका—कठ और अरट्ट, क्षुद्रक और मालव, क्षत्रिय और यौधेय, आर्जुनायन और मद्रक, आभीर और पुण्यमित्र ।

वाचक—लोकनग्रह लोकक्षेमके आग्रहमे सजीव थे हमारे वे गणतन्त्र, शक्ति की सीमा, दुर्बलके बल—

वाचिका—अति प्राचीन उन्ही अन्धक-वृष्णियोंके मघमे—

श्रवूर—नहीं, मघ मेरे वादको सुने, उमकी अवमानना न करे । राजन्य उग्रसेनके शासनने उमे सम्पुष्ट किया है । इस वादमे अन्धकोकी अभिरुचि है, अन्धक-वृष्णियोंका मघ इसे सुने ।

प्राह्वक—वृष्णियोंके राजन्यपर, वासुदेव कृष्णपर, यहाँ आरोप उपस्थित है, राजन्य उग्रसेन, आरोपकी सत्र अवमानना करे ।

अक्रूर—व्यक्ति की मर्यादा वर्ग की मर्यादामें बड़ी नहीं, वर्ग की मर्यादा गण की मर्यादामें बड़ी नहीं, आहुक, गण की मर्यादा मय की मर्यादामें बड़ी नहीं । फिर वामुदेवने बार-बार अन्वको की, उनके राजन्य उग्र-सेन की, भर्त्सना की हैं । राजन्य उग्रसेनमें निवेदन करता हूँ, मघमें विनीत आवेदन करता हूँ, मघ सुने वाद की अपमानना न करे ।

उग्रसेन—सघ वाद सुने । अन्वको के परम विरोधी वामुदेव कृष्ण आरोपका भजन करे । दूसरोपर आरोप करनेमें वे स्वयं मनन जागरूक रहते हैं, दोषदर्शनमें स्वयं सदा तत्पर, कभी विरमते नहीं, पलक नहीं मारते, अक्रूरको वे वाणी दे, आरोपका प्रतिवाद करे । मघ वाद सुने ।

अन्वक वर्ग के प्रतिनिधि—सुने । सुने ।

वृष्णि वर्ग के प्रतिनिधि—नहीं । नहीं ।

कृष्ण—कृष्ण अक्रूर की वाणी सुनेगा, आरोप की अपमानना न करेगा । क्या है अक्रूरका वह आरोप ? मघ अक्रूरका अभियोग सुने—

अक्रूर—आरोप है—वृष्णि वर्ग के नेताका मघ के प्रतिकूल आचरण, वाष्पांग कृष्णका कौरव-पाण्डव युद्धमें पक्ष-पारण, जब कि अन्वक-वृष्णि-मघने उसके विपरीत अपनी उदासीन नीति घोषित की थी ।

क. वर्ग—साधु । साधु ।

कृष्ण—मेरा आचरण मघ के प्रतिकूल नहीं था, अक्रूर ।

अक्रूर—वामुदेवने क्या अर्जुनका रथ-संचालन नहीं किया था ?

कृष्ण—किया था, अक्रूर, पर निरम्ब ।

वृष्णि वर्ग—साधु । साधु ।

अक्रूर—वामुदेवने क्या युद्धमें उदासीन मध्यस्थता को समर्थ किया तत्पर नहीं किया था ?

कृष्ण—किया था, अक्रूर, तन्त्रबोध के दृष्टि ।

वृष्णि वर्ग—साधु, वासुदेव, साधु ।

अक्रूर—क्या वासुदेवने पाण्डवोंकी विजयकामना नहीं की थी ?

कृष्ण—की थी, अक्रूर, सत्यपक्षकी विजय-कामना की थी । मनसा निरोध सधका आदेश नहीं, वचसा निरोध उसका दर्शन नहीं, कर्मणा निरुद्ध मैं स्वयं रहा हूँ । अक्रूर, तुम्हारा आरोप निष्प्राण है । मैंने युद्ध रोकनेके हजार प्रयत्न किये और विफल हो विना अमर्षके भगिनीपति मध्यपाण्डवका निहत्था सारथी बना । वाद असिद्ध है, अक्रूर ।

वृष्णि वर्ग—असिद्ध । असिद्ध ।

अक्रूर—और सुभद्राका अर्जुनके साथ पलायन किस योजनाका परिचायक था, कृष्ण ?

कृष्ण—यह विषयान्तर है, अक्रूर ।

अक्रूर—और चक्रधरने शिशुपालका वध क्यों किया था ? पत्नीविरहित शिशुपालने पत्नी-अपहारी कृष्णके राजसूयमें पूजनका उचित विरोध ही तो किया था ?

कृष्ण—विषयान्तर है वह भी, अक्रूर, वादकी पुष्टि करो ।

वृष्णि वर्ग—वाद निरारोपित हुआ । अभियोग असिद्ध ।

अक्रूर—नारीचोर ! भगिनी भगानेवाला ! सधभेदक कृष्ण ।

वृष्णि वर्ग—कुवाच्य ! कुवाच्य !

अन्धक वर्ग—नारीचोर ! सधभेदक ।

[अनेक कण्ठोंकी मिलीजुली आवाज, शोर]

दूसरा दृश्य

वाचक—पुरानी बात है, प्रायः ढाई हजार माल पुगनी, जब आन भिक्षुओंको पुकारकर, अभिगम दुकूल धारे आभरणामे दमको रजतरयोपर चढ़े लिच्छविकुमारोंको दिवाकर तथागतने कहा था—“देवो, भिक्षुओ, देवो—स्वर्गके तैनीम देवताओंको जो तुमने अन्तर्दृष्टिसे अवतक न दगा हो तो, भिक्षुओ, उन्हें अब देवो । इन लिच्छवियोंको देवकर उन्हें जानो । माता दगा उन्हें, मगरीर देवो”—

वाचिका—उन्हीं लिच्छवियोंकी वेशालीमे लक्ष्मीका लाला वह महानाम था जिसकी एक कन्या थी, आस्रपाली । पोर-पोर मोठनी तब चली । उसकी लोनी कायामे जब उबि लुकी तब माताकी गत बन गई । नागरिकाओंकी अलकोंके फूल मुग्धा गये, उनके गिरा कुन्तल रुगे हो गये, रुजगरे उपान्त मूते । उनके मजन गो मय, गतिवासोंकी गगिनियाँ मूक हो गई ।

वाचक—और जब कन्याका यौवन सप-सा न्य उड़ाये विपजिह्वा लपटाता उसे डंमने लगा और राजाजा-श्रीमानोंकी प्रणयमिता तब आस्रपालीने अम्बीकृत कर दी तब महानाम जा पट्टा लिच्छविके सथागारमे—

वाचिका—मान हजार मान सा मान लिच्छवि कुलाका, कुलाका राजा का, गण था वह । उसी वेशादीके लिच्छविके सथागारमे—

महानाम—महानामकी कन्या है यह, यह आस्रपाली, सथागार नदी पर खड़ी । राजाजा, श्रेष्ठियोंके जन्मनिवृत्त, श्रीमानोंके परिणाम प्रस्ताव डमने उपहित कर दिये । गण उसका नाम सात, इसका भविष्य विचारे । मरीयात उचरनी नदी की मारी । कन्याका गण विधान करे, उगलिय पाव कर राजा पुगनी ।

से वैशाली भरी है, गण विचार करे, गण विधान करे, गण कन्याका मङ्गल करे, यह मेरी ज्ञप्ति है, यही मेरी कम्मवाचा है ।

अर्णव—आदरणीय गण सुने—यह मेरी प्रतिज्ञा है—आदरणीय गण उचित परामर्शके अर्थ गुप्त अधिवेशन करे । आदरणीय गणको यदि यह मान्य हो तो वह मौन रहे, आदरणीय गणको यह अमान्य हो तो वह बोले ।

मैं फिर कहता हूँ—“आदरणीय गण सुने—मैं फिर कहता हूँ आदरणीय गण सुने”—आदरणीय गण मौन है मेरी प्रतिज्ञा स्वीकृत हुई । गुप्त अधिवेशन हो ।

वाचक—और ‘राजा’ने गुप्त अधिवेशनका निर्णय गणको सुनाया—
“आम्रपाली स्त्रीरत्न है, गणकी । गणकी एकजाई सम्पत्ति, एकाकी प्रभुत्वसे ऊपर । परम्पराके अनुसार महानाम उसे गणको सौंप दे ।”

तीसरा दृश्य

वादिता—राजगृहके महलोमे पितृहन्ता अजातशत्रु व्याकुल टहल रहा है । वज्जियो-लिच्छवियोंके आक्रमण आये दिन मगधपर होते रहते हैं । गंगा लांघ वे उसके तटवर्ती गाँवोंको लूट लेते हैं । पाटलि गाँवके समीप गंगा और शोणके कोणमे उसने उन्हें रोकनेके लिए कोट बना रक्खा है, पर उसमे रक्षा हो नहीं पाती । वज्जियोंका सघ जीतकर वह मगधमे मिला लेना चाहता है पर उन्हें जीत पाता नहीं वह ।

वाचक—लाचार वह अपने मन्त्री वस्सकारको तथागतके पास गिद्धकूट पर्वतपर वज्जियोंको जीतनेका उपाय पूछने भेजता है । वस्सकारके मनकी बात तथागत समझ लेते हैं, उसका उत्तर वे आनन्दको देते हैं—

बुद्ध—आनन्द, क्या तुम जानते हो कि वज्जी जल्दी-जल्दी और भगे-भगे अपनी बैठके करते हैं ?

आनन्द—जानता हूँ, भन्ते ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, कि वज्जी एकमत होकर मिलते हैं, एकमा होकर कार्य करते हैं ?

आनन्द—हाँ, सुगत, जानता हूँ ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, कि वज्जि लोग प्राचीन नियमोंका उत्तरदा नही करते, प्राचीन सस्थाओंके अनुकूल कार्य करते हैं ?

आनन्द—हाँ, तथागत ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, कि वज्जी वृद्धोंका आदर करते हैं, उनकी सलाह मानते हैं ?

आनन्द—भन्ते, जानता हूँ ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, वे अपनी नारियों-बालिकाओंके साथ ल पयोग नही करते ?

आनन्द—हाँ, भन्ते ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, कि वज्जियोंकी अपने चैत्योंमें, धम्म दूड निष्ठा है ?

आनन्द—जानता हूँ, भन्ते ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, वज्जी अपने अर्हत्ताका सम्मरण और पाटा करते हैं ।

आनन्द—हाँ सुगत, जानता हूँ ।

बुद्ध—जब तक आनन्द, वज्जियोंका यह सम्मरण और पाटा है । तब तक उनके पतनकी आशंका नहीं, तब तक वज्जी असीम हैं, शाश्वत ।

वस्सकार—[स्वगत] तत्र मगध देशे वज्जिपुत्राणां पराभवो भविष्यति ।
हिमालय तः पश्चात्त्यक्ते सिन्धुतटा मगधराज्यात् ।

स्वप्न है । अब तो स्वामीको केवल मित्रभेदका, सघमे फूट डालने वाली नीतिके अवलवनका मन्त्र दूँगा ।

[प्रस्थान]

नेपथ्यमे—बुद्ध सरण गच्छामि ।

धम्म सरण गच्छामि !

सघ सरण गच्छामि ।

चौथा दृश्य

[अनेक मानव ध्वनियाँ । क्षुद्रक-मालवोका सम्मिलित अधिवेशन । तलवारोकी रह-रहकर झकार]

वाचक—तथागतके निर्वाण लिये दो सदियाँ बीत गई । सहसा भारतके पश्चिमी आकाशपर तूफानके बादल घुमडने लगे । सिकन्दरने ससुराले निरवृत्त ससुरालागसी सीट छोड़ दी थी, और शत्रु पजावमे था ।

वाचिका—हिन्दूकुग और उद्यान, आभी और पौरव, अग्रश्रेणी और अबण्ठ, अरट्ट और कठ, यौधेय और आर्जुनायन एकके बाद एक सर हो गये । तब व्यासके तीर ग्रीकोको सहसा काठ मार गया, प्राचीके राजा नन्दका उनमे डर समा गया । वे लौटे ।

वाचक—पर उनका लौटना भी कुछ आसान न था, जब इच-इच धरतीके लिए गणतन्त्रोके नागरिक जूझ रहे थे । तब प्राय समूचे पजावपर, समूचे सिन्धपर गणतन्त्रोके शासन कायम थे । और उन गणतन्त्रोमे प्रधान हूँनिया और तलवार एक साथ धारण करनेवाले क्षुद्रक और मालव रावीके तटपर थे ।

वाचिका—सिकन्दरका समान सकट सिरपर आया देग उन्ही क्षुद्रक-मालवोके सम्मिलित अधिवेशनमे—

समवेत स्वर—मालव गणकी जय ! क्षुद्रक गणकी जय ! मालव क्षुद्रक
सघकी जय !

[शस्त्रोकी आवाज]

संघराज—गणोंके प्रतिनिधियो, पचनद यवनोने आक्रान्त है, कुभूमे पिपाणा
तक शत्रुकी छाया डोल रही है । क्या आज भी क्षुद्रको और
मालवोका पुराना वैर बना रहेगा ? क्या आज इस समान सकटके
सामने भी हम एका न कर सकेंगे ?

[नेपथ्यमे, मिली-जुली आवाजें—सुनो ! सुनो !—अनेक स्वर
एक साथ]

मालव गणराज—मालवोकी ओरसे वैर भाव मिटानेका शपथ मैं लेता हूँ ।

इस समान सकटमे शत्रुका हम एक साथ सामना करेंगे ।

अनेक स्वर—मालव गणराजकी जय ! मालवोकी जय !

क्षुद्रक गणराज—क्षुद्रकोकी ओरसे मैं शपथ करता हूँ कि जब तक गणोंका
शत्रु क्षितिजसे ओशल न हो जायगा तबतक क्षुद्रक प्रतिनिधियोंकी
आवाज अपने भीतर उठने न देगे ।

[नेपथ्यमे, मिली-जुली आवाजें—अनेक स्वर एक साथ—क्षुद्रक
गणराजकी जय ! क्षुद्रकोकी जय !]

संघराज—नही गणप्रतिनिधियो, नहीं । इस मौनिक जगमे काम नहीं
चलनेका । हजार मालवमे चढ़े आते वैरके दैत्यमे हमारा दृष्टांत
इस तरह नहीं होनेका । चाहता हूँ कि इस सकटके समय मालव
और क्षुद्रक जो मिलें तो मर्दाने दिए एक हो जाय । चाहता हूँ कि
दस हजार मालव युवक दस हजार क्षुद्रक युवतियाँ हों और
दस हजार क्षुद्रक तम्रण दस हजार मालव नर्तनियोंके कर हों ।
कौन है भला वे मालव और क्षुद्रक तम्रण जो पुराना वैर न पाएँ
गणोंके इस गुहारको पालेंगे ?

[नेपथ्यमे, अनेकानेक आवाजें एक साथ—हम पालेंगे ! हम पालेंगे ! तलवारे खनकनेकी आवाजें, पैरोकी आवाजे, नदीकी कलकल—बीच-बीच ।]

सघराज—बन्धुओ, रावीके तटपर की हुई हमारी यह प्रतिज्ञा मिथ्या न होने पाये । अपनी इस पुण्य सलिला माताके जलको स्पर्श कर हम शपथ करे कि विदेशियोको उसकी घाटीमे, उसकी मिट्टीपर, प्राण रहते हम टिकने न देंगे ।

[नेपथ्यमे—बहते जलकी आवाज, बहुतसे लोगोका एक साथ जल उठाना—मालवोकी जय ! क्षुद्रकोकी जय ! मालव-क्षुद्रकोकी जय ! गगनभेदी ध्वनि । शस्त्रोकी झकार ।]

पाँचवाँ दृश्य

दाचक—और जब सिकन्दरकी फौजे व्यामसे लौटती हुई रावी और चुनाव के मझमके दक्खिन मालव-क्षुद्रकोके जनपदकी ओर चली तब मालव और क्षुद्रक किसान भरे खेतोके बीच हँसिये फेक तलवारे सम्हालते गाँवोकी ओर दौड़े, सीमाकी ओर जहाँ अपमानकी चोटसे खिले तसारके विजेता जिन्दगीकी वाजी लगा बैठे थे—

[नेपथ्यमे—घोडोकी हिनहिनाहट, जख्मी सैनिकोकी कराह, घोड़ाओका हुकार, हाथियोकी चिन्घाड ।]

सिकन्दर—सेन्यूकम, वियोनिर्याँके वीर देखे, मिस्त्रके लडाके, पारदके वाँके देखे, वारत्रीके योद्धा, पर आज जो देखा वह कभी न देखा ।

सेन्यूकस—नही, सिकन्दर, बेमिखे किमानोका इस तरह मैदान लेना तो न देखा न सुना, और जो कही विजेताने उन्हीको उनके मुँहमे झोक लोहाने लोहा न काटा होता तो, ज़िउकी शपथ, रावी हमारी नमाधि बन गई होती ।

सिकन्दर—उनके जैसे मनुज तो, सेल्यूकस, कही न देगे, न मरुनियॉम, न एयेन्ममे, न म्पातमि ।

सेल्यूकस—और इन अराजक जातियोका शासन भी अपने ग्रीक नगर-राज्योका-मा ही लगता है । उनका न कोई राजा है, न मर्याद वम मुखिया है जो जनपदोकी सम्हाल करते हैं ।

सिकन्दर—सोचता हूँ, सेल्यूकस, जो यह पौरव न होता, जो जानगे मजदूर किये हराये कबोले न होते तो मरुनियॉम गितारा ना आज डूब ही चुका था, फिलिप और रिज्योपाताका नाम-लेना भला आज कौन होता ? कौन अरम्भूकी उम्मीदका सागर बनाता ? क्या होता मेरी आशाओका, मान जिनका आँख पकट मैं देग-देग फिरता रहा हूँ, आभारा, जैसा उम मा पुन रता था, साम्राज्यका एक छोर दवाता दूसरा अम्बरम उठाना—

सेल्यूकस—मही, सिकन्दर, पर अब उमका अफमोम गया ' उम दाती दुनिया भी मर हो गई—कठोती आजादीपर पौरव दाती ०, अरट्टोकी आजादीपर क्रान्तेरमती नलवार मूठ रही है, माउम । घमण्टपर परदिमका गोजन्य विरगता है । परेशानी गया है ।

सिकन्दर—परेशानीकी एक ही पूछी, सेल्यूकस । आम्मी और पौरव तद और अरट्ट, मालव और शुद्रक—एक आजाद हुए पौरव न रग्या । भारत ईरान नहीं है, वियूनिया और मिन नहीं है, जिनपर आ । ग्रीकोका चंवर डोलता है । पर छोडो, ना मर्यादा न जा ०० । उमकी चिन्ता क्या ?

[सैनिकका प्रवेश]

सैनिक—विजेता, शुद्रकोके सी प्रतिनिधि आ गये हैं, मरती आ । ०००० लिये हुए, विजेताके प्रमादो यावर है ।

सिकन्दर—सेल्यूकस, जाओ आदरमे उहे मेरा । उमका मर्याद न ०००० कि वे अपनी पराजय मूठ जावे । मर्याद न ०००० ००००

ये कारचोवीके कुर्ते पहननेवाले, पुरसे-पुरसे भरके जवान, रूपमे अपोलोको लजा देनेवाले । जाओ, उनका स्वागत करो ।

[प्रस्थान]

वाचक—सिकन्दरका दरबार लगा है, स्वर्ण और कीमती वस्त्र धुद्रकोके प्रतिनिधि उसे भेट कर रहे है । साडो और वैलोके जोडे, घोडो और सुन्दर भेडोको पकितियाँ, मैदानमे भेटमे आई हुई खडी है । और सिकन्दर अपनी जीतका वैभव पुलकित देख रहा है ।

सिकन्दर—दूतराज, धुद्रकोको मैं शत्रु नहीं मानता, न अपनेको मैं उनका विजेता मानता हूँ ।

दूत—विजेताकी यह उदारता है जो वह धुद्रकोको शत्रु नहीं मानता, अपनेको उनका विजेता नहीं मानता । पर बात यह बदलती नहीं कि आप विजेता हो, धुद्रक हारे हुए है । हाँ, उस हारका एक राज जरूर है ।

सिकन्दर—वह क्या, मेरे मित्र ?

दूत—कि धुद्रक कायर नहीं है, शौर्यकी उनमे कमी नहीं । बात वम इतनी है कि उनका दैव उनसे रुठ गया है, और कि वे फिर लडेगे, फिर-फिर लडेगे । पर अभी तो विजेता यह हमारी भेट स्वीकार करे, हमारी अराजक सत्ताके साथ उदारतासे व्यवहार करे ।

सिकन्दर—जाओ दूतराज, स्वच्छन्द हो, तुम्हारे राष्ट्रको कोई जीत न नकेगा । जमीन जीती जाती है, मैदान जीते जाते है, पर आदमी नहीं जीता जाता, आजाद दिलोपर हुकूमत नहीं होती । जाओ, तुम्हारी यह उदार भेट हम मित्रवत् स्वीकार करते है । और तुम्हारे देवप्रतिम मित्रोकी राह अकण्टक हो ।

[प्रस्थान—दूर जाते हुए घोडोकी टापोंकी आवाज]

छठों दृश्य

वाचक—सिन्धुके जनपदोंकी आजादी भी मिट गई । जिति और मक्ति पराभूत हो गये । भीकोका झंडा वहाँ भी फहराया । पर उगाता के झण्डे एकाएक गाँव-गाँवमें सड़े होने लगे, सिकन्दरको गाँव-गाँव लौट वागियोंका सामना करना पड़ा । जब उसने जाना कि विद्रोह फैलाने वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं तब उसने एक दिन उनके मुखियोंको पकड़ लिया । उनका न्याय शुरू हुआ ।

सिकन्दर—[साधुओंसे] प्राणदण्डके अधिकारी हो, पर मुता है हातिर-जवाब बड़े हो, मो उसका सबूत देना होगा । तुममेंसे एक न्यायाधीश बनेगा वकीलोंमें मैं एक-एक सवाल करूँगा और जिन सहीका ना जवाब होगा उसीके मुताबिक पहले-पीछे तुम सारा प्राणदण्ड भी मिलेगा । और उग सखीका निर्णय न्यायाधीश करेगा ।

वाचक—नगे मुसकराते साधु चुपचाप मुनते रहे, सिकन्दरके सवाल्यों इन्तजारमें उसकी ओर देगते रहे ।

सिकन्दर—[एकमे] तुम्हारे विचारमें जीवितानी मरणा अभिष है या मरे हुआ की ?

ह . साधु—जीवितोंकी, क्योंकि मरे हुए मरतार फिर नहीं रहता ।

सिकन्दर—[दूसरेमें] जीव समुन्दरमें ज्यादा है या जमीनपर ?

दूसरा साधु—जमीनपर, क्योंकि समुन्दर जमीनता ही एक हिस्सा है ।

सिकन्दर—[तीसरेमें] जानवरोंमें सबग बुद्धिमान कौन है ?

तीसरा साधु—[हमकर] वह जिनका पता मनुष्य नहीं कर पाया और जो उसकी नजरान आसद, समुन्दर आसद है ।

सिकन्दर—[चौथेमें] तुमने यमनुको क्यापति किया तब उसका ?

चौथा साधु—क्योंकि मैं चाहता था कि अगर वह फिर ना देगा । नाथ और मरे तो इन्तर्गत साध ।

सिकन्दर—[पाँचवेंसे] पहले कौन बनाया गया, दिन या रात ?

पाँचवाँ साधु—दिन पहले बना, रातसे एक दिन पहले ।

सिकन्दर—[गुस्सेसे] क्या मतलब ?

साधु—मतलब कि असम्भव सवालका जवाब भी असम्भव होता है ।

सिकन्दर—[छठेसे] मनुष्य किस प्रकार दुनियाका प्यारा हो सकता है ?

छठा साधु—बहुत ताकतवर, पर साथ ही प्रजाका प्यारा होकर, जिससे प्रजा डरे नहीं ।

सिकन्दर—[सातवेंसे] मनुष्य देवता कैसे बन सकता है ?

सातवाँ साधु—अमनुजकर्मा होकर ।

सिकन्दर—[आठवेंसे] जीवन और मृत्यु दोनोंमे अधिक बलवान कौन है ?

आठवाँ साधु—जीवन, क्योंकि वह भयानक-से-भयानक तकलीफ वरदास्त कर सकता है ।

सिकन्दर—[नवेंसे] कबतक जीना इज्जतसे जीना है ?

नवाँ साधु—जब तक मनुष्य यह न सोचने लगे कि अब जीनेसे मर जाना अच्छा है ।

सिकन्दर—[न्यायाधीशकी ओर फिरकर]—अब तुम मुझे बताओ कि किमका जवाब सबसे ज्यादा चुस्त है, कि उसे पहले प्राणदण्ड दे सकूँ ।

साधु—जवाब एक-से-एक बढकर है ।

सिकन्दर—[खीझकर] तब सबसे पहले तुम्ही मरोगे ।

[सहसा ग्रीक दार्शनिकोका प्रवेश]

ग्रीक दार्शनिक—[एक साथ] नहीं, नहीं, विजेता, अन्याय न करो ।

अब वारी तुम्हारी है जो बताये कि एक-से-एक बढकर जवाबोमे सचमुच बढकर कौन है ? असलमे जवाब इसका अब इन साधुओ-की आज्ञादी है, इन्हे छोड दो ।

सिकन्दर—[हँसता हुआ] जाओ, साधुओ, तुम आजाद हो। तुम्हारी निर्भीकताकी पहले बस कहानी ही सुनी थी, आज उभे अपनी आँखों देखा।

[प्रस्थान]

सातवाँ दृश्य

वाचक—यौधेयोके जलते हुए गाँव, जलती हुई रोती, गाँवके बाहर मैदानों-
में जूझते हुए यौधेय, कोटके भीतर दीवारोंपर चढ़े हुए ताने
वीर, नीचेसे उन्हे तीर थमाती नारियाँ—
समरगतनितन विजयी समुद्रगुप्तकी सेनाएँ पहुँच ही पायी हैं,
झाड़खण्डके यौधेयोके गाँव उजड़ते जा रहे हैं—

बेटा—जा-जा, लीक-लीक चली जा। गाँवियाँ अभी कुछ ही दूर गई हगी।

माँ—चुप कर, बड़ा आया गाँवियोंकी लीक बतानेवाला—तेरे दादाजी
उन्ही मैदानोंमें जूझते देखा था, बाप तेरा अभी कुछ ही पैर दूर
है, तू भी अगर पक्का मैदानी बना, मेरा बच्चा बेटा, और मैं
गाँवियोंकी लीक फाटूँ। तू जा अपनी राह। मैं गाँवकी
ओर चली।

बेटा—माँ, मेरी प्यारी माँ, न जा गाँव की ओर तू। आज जल रही है,
हाहाकार मचा हुआ है, इन दिव्यजयाने मनुष्यों की आँखों
टिगनी कर दी।

माँ—तू अपनी राह ले, बेटे, रणनी ओर जा, मैं गाँवियोंकी लीक
और अपने जमे सपनोंकी राह डूँगी मरने की मिट्टी में। मैं
एक गाँव खड़ा न रहेगा, न एक पैर बचा रहेगा—मैं गाँवियोंकी
सेनाओंको आहार निरेगा और न उनको रोना दूँगी।

[धनुष-बाण लिये एक बूढ़ा दब-दब महिष प्रवेश]

वृद्ध—गावाग देवि ! यौधेयोने गावोकी बस्ती कुछ आज नयी नही बसायी । सदियोसे उनके गाँव बसते और उजड़ते चले आ रहे हैं । आजादी का जीवन आरामका नही, शकाका है और जब-जब आजादीपर उसकी चीलोने झपट्टा मारा है उसके बाँकोको दर-दरकी धूल छाननी पडी है । सिन्धुमे पञ्चनद, पञ्चनदसे मरुभूमि और झाडखण्ड, और अब न जाने कहाँका दानापानी होगा ।

माँ—इसी कारण खडे गाँवको छोड जाना पाप होगा । हमे मालवोकी राह जाना है, आर्जुनायनो सनकानीकोकी राह, अरट्टो अग्र-श्रेणियोकी राह । मौर्योंकी चोटसे आजादीके दीवाने मालव अवन्ती जा बसे, हमारे भी उतडे पाँव कही रुकके ही रहेंगे । जाओ, तुम अपनी राह जाओ, मेरे बेटेको भी साथ ले लो । विदा, बेटे, विदा ।

बेटा—चला, माँ, रणमे मरकर अमर होने, क्योकि दिग्विजयी सम्राटोकी परम्परा आजाद जातियोको लीलकर रहेगी ।

[माँ-बेटेका प्रस्थान]

वृद्ध—पहचाना नही मुझे उसने, निकल गया रावतका बेटा, रणमे जूझने । मालवो सनकानीकोको राह गया वह, आयुधजीवी यौधेयोकी राह ।

एक युवक—गुरुवर, शास्त्रकी जगह शस्त्र धारण करनेवाले ऋषिवरको भला भैतिक कैसे पहचाने ? हम स्वयं जो इस वेशमे अचानक देख लेते तो क्या पहचान पाते ?

[यौधेयोके वृद्ध पुरोहितका प्रवेश]

पुरोहित—[वृद्धको पहचानकर]—अरे आप इस वेशमे ।

वृद्ध—राष्ट्रकी रक्षामे यही वेश वाछनीय है । परशुरामको विवश होकर ही परशु धारण करना पडा था ।

पुरोहित—सम्राटोकी महत्वाकांक्षा जो न करा दे ।

वृद्ध—वे सम्राट् मिट गये जिन्होंने दिग्विजयके बाद कहा—“भारत मेरा है ।” आज राघव राम और उनके साम्राज्यकी स्मृति भी जाती हो चली है, समुद्रगुप्त जिस यज्ञ कायाका निर्माण सम्राटोको रोका था आज करने चला है वह भी कल धूमिल हो जायगी । ऐश्वर्या का विवकार है । साम्राज्यको विवकार है ।

[प्रस्थान]

आठवाँ दृश्य

वाचक—

चतुस्समुद्रान्तविलोचमेवता

सुमेरुकैलामनूहत्पयोधराय ।

वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनी

कुमारगुप्ते पृथिवी प्रशामति ॥

चारों समुद्र जिसकी मेरुधरा है, सुमेरु और कैलास जिसके पयोधर हैं, विले फूलोंमें भरे वनान्ता और उगताजागता पृथिवी रहती है, ऐसी पृथ्वीपर जब सम्राट् कुमारगुप्त का शासन था—

—तब नर्मदा तीरके पुण्यमित्रोंने अपने वन-जननी जीता । उस साम्राज्यको मनरेमें डाक दिया था, गुप्तानी दुर्ग भी विजित कर दी थी । विलानी सम्राट् का ऐश्वर्य तब उसी शक्ति का छायामें पड़ने लगा था । पुण्यमित्रों का स्वर्ण कलाश स्वन्दगुप्त गत गणनेयमें नहीं पर तब भी मोहर दिया था था था, तभी—

स्वन्दगुप्त—यह युद्ध नहीं हो सकता, जाय ।

गोविन्दगुप्त—मच, नहीं हो सकनेका यह युद्ध । धार्मिकोंका धर्मन ब्रही युद्ध होता है ?

स्कन्दगुप्त—जहाँ बाल-वृद्ध, नर-नारी अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए सन्नद्ध हैं, जहाँ राष्ट्रका समूचा धन राष्ट्रकी रक्षाके लिए जन-जन लुटा रहा है, वहाँ युद्ध पाप है । आर्य, वे अपनी आजादीकी रक्षाके लिए लड़ रहे हैं, हम अपने साम्राज्यकी सीमाएँ बढ़ानेके लिए । धिक्कार है इस अर्थलोलुपताको । कुन्तल ।

कुन्तल—कुमार ।

स्कन्द०—लाओ वन्दीको ।

कुन्तल—जो आज्ञा, देव ।

[प्रस्थान और वन्दीके साथ प्रवेश]

स्कन्द—सैनिको, छोड़ दो वन्दीको ।

वन्दी—यह क्या, युवराज ? शत्रुपर यह अनुग्रह कैसा, जब पुण्यमित्रोने साम्राज्यको खतरेमे डाल दिया है ? गुप्तोने निवृत्तिका मार्ग कवसे अपनाया ?

स्कन्द—परिहास न करो, गणसेनापति । तुम्हारी मुक्तिका कारण मैं हूँ, साम्राज्यका सचिवालय नहीं, सम्राटकी अभियान-नीति नहीं ।

ग०से०—पर इससे क्या यह समझूँ कि दिवगत समुद्रगुप्तकी नीतिसे युवराजने अवकाश ले लिया ?

स्कन्द०—नहीं, सेनापति, सो नहीं । सम्भवत उस नीतिका पालन राजाओ, आक्रान्ताओके विरुद्ध मुझे आगे भी करना ही होगा । पर लगता है पुण्यमित्रोसे युद्ध अपनेसे युद्ध करना है, आत्मघात है । जाओ, तुम अपनी सीमाओको सम्हालो, साम्राज्य दक्षिणमे नर्मदा पार पग न धरेगा ।

ग० से०—पुण्यमित्रोके मुखिया और कहते क्या रहे है, युवराज ? मामा-
ज्यकी सीमाआका अतिक्रमण तो उन्होंने छोड़ता उतर लेने
देनेके लिए वस्तुतः अपनी रजामे किता है । वरना उते मगर
झगडा ही किम बातका है ? पर हाँ, युवराज, उन तरकीबी गिना-
लताका कुछ आभास आज मिला जिन्हे मजके गीत ईन तीर
धानके खेतोमे कन्याएँ गाती है ।

स्कन्द०—कृतज्ञ हूँ, मन्नापति । जाओ, मामाज्यके गैरिक मेरे रंगों आम
नर्मदा पार न करेगे । [गोविन्दगुप्तसे] खो, आर्य, उस पोषणा-
की अनुमति है ?

गोविन्द०—निश्चय, वत्स । दर्शन तुम्हारा समुचित है । यह लाज-विग्रह
है, नीतिमान राजाका धर्म । आज्ञास्मृत हैं कि उसका पावन कर
रहे हो । धरा तुम्हारे शासनमे नि सन्देह राजवती होगी । वध,
अब इस महाकालारम निकलो, कुमुदपुर चला ।

स्कन्द०—चले आर्य, कुमुदपुर चले । पर कौशाम्भीका जनपद, पाप
समृद्धा अन्तर्बद, भयमे जाक्रान्त है । लगाता स्वेच्छ पशुता ।
देवभूमिपर होने ही वाला है । छीजे बड़का आशेषतो नाशनाशिम-
की रक्षामे ही उत्थान करे ।

० से०—दामा, युवराज । वग एक शब्द । यदि उस दिशासे पया । पर
तो उन कृतज्ञ मित्रको न मरे, और जाने कि पुण्यमित्रका ।
जन देजकी रक्षामे हिन सतत रहेंगे ।

[प्रस्थान]

वाचक—और नदियाँ बँध गइ । आसमान पर पतंग । वीर । पर
वग एक आसन्नानि वगुणो छुट । पर । पर । पर ।
किर हमारे लाकतव्ये नये । पर । पर । पर ।

वाचिका—और एक दिन वलिदानोकी इस भूमिपर, वलिदानो भरे आन्दोलनोके बाद, रक्तमे युग-युग नहाई दिल्लीमे अपनी लोकसभाने जन्म लिया । १५ अगस्त सन् १९४७ की रात भारतने नया जन्म लिया, हमारा गणतन्त्र अहिंसा और गान्तिके सबल लिये जनतन्त्रोके राजमार्गपर खड़ा हुआ—

न राज्य कामये राजन् न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दु खतप्ताना प्राणिनामातिनाशनम् ॥

नारी

अङ्क—१ । दृश्य—१

[आजसे प्राय बीस हजार साल पहले । कन्दराके द्वारपर नारी खड़ी है, लगभग नगी । क्रोधसे उसके नथुने फूल रहे हैं, सिरके बाल हवामे उड़ रहे हैं, वैसे ही नाक और बगलोके भी । शरीर रोमोंसे भरा है । शिराव्यजित कन्धे और गठी भुजाएँ हिल रही हैं । एक पैर भूमिपर है दूसरा चट्टानपर टिका है । थोड़ी दूरपर दो युवा एक अघेड़ नरको नारीकी आज्ञासे पीट रहे हैं । चोटोंसे भरा वह गिड़गिड़ा रहा है । नारीका क्रोध शान्त नहीं होता ।]

नारी—और मार, मार इसे चीतल [सारकी आवाज], मार महिष, इन चोरको ।

[महिष लात-घूँसेसे उसे मारता है ।]

नर—[गिड़गिड़ाता-रोता] अब नहीं, अब न मार, जालिम । वस एक बार और छोड़ दे, एक बार ।

नारी—मार चित्ती, और मार, इस झूठेको । चोर कहीके । मैं शिकारको गई और यह मेरी दुश्मनकी माँदमे जा धँसा, यह चोर । दे इसे और । आज जिन्दा न छोड़ूँगी । मैंने खुद इसे तालकी चट्टानोंके पीछे मित्तासे चिमटते देखा था । लगा, चीतल, दो हाथ और इनके, एक बयो गया, पाजी ?

[मारनेकी आवाज]

नर—नहीं, नहीं, अब दया कर । दया कर, फिर कभी तेरी छाया नहीं छोड़ूँगा, मिनी । वस एक बार और माफ कर दे, छोड़ दे । तेरे तलवोंके बाँटे चुनता दिन काट लूँगा । छोड़ दे ।

नारी—[चट्टानपरसे पाँव हटाते हुए] अच्छा, छोड़ दे चीतल । छोड़ दे महिष । एक बार फिर छोड़ देती हूँ । [छोड़ देते हैं] पर देख मुरल, अब फिर जो मैंने तुझे मिताके पाम पाया तो वम याद रख, सुअरके साथ-साथ तुझे भी भून डालूँगी । जा, अब आँखोंके सामनेसे । [मुरल गिडगिडाता, लडखडाता, चोटसे व्याकुल चला जाता है]

नारी [चीतल और महिषसे] देखा, मेरा कोप ! खबरदार जो कभी इसका तौर सीखा । उँगलियोंमें एक नाखून नहीं रहने दूँगी । [दोनों चुपचाप सिर झुका लेते हैं । नारी धीरे-धीरे उनके पाम जाती है, हाथसे दोनोंको परसती है, उनके थूथनोपर बारी-बारीसे अपना थूथन रखती है । उनकी पीठ ठोकती है । दोनों प्रसन्न चले जाते हैं ।]

[प्रस्थान]

दृश्य २

[गुफाके द्वारपर आग जल रही है । जंगली जानवर आते हैं और लपटोके डरसे दूरसे ही भाँककर चले जाते हैं । चीतल और महिष थोड़ी-थोड़ी देरपर आगमें लकड़ी डाल दिया करते हैं । गुफामें एक ओर मिनी और मुरल एक दूसरेके पासमें बंधे पड़े हैं । दोनों हल्के-हल्के बात कर रहे हैं । दोनों रह-रहकर एक दूसरेको चाट लेते हैं ।]

मिनी—मुरल, तू मुझसे नाराज है ? दुखी है ? [उसे चाटने लगती है]

मुरल—आज तूने मुझे बहुत मार लगवायी, मिनी । मेरा जोड़-जोड़ फटा जा रहा है । जा, तू जा ।

मिनी—फिर तू चोरी क्यों करता है ? क्यों उस हिरनमुँहीके पास जाता है ? क्यों उसे पीठपर चढ़ाकर नाचता है ? उसे चाटता है ? अब ऐसा न करना, भला ?

मुरल—अब करूँगा तो तू जान छोड़ेगी ? आह ! [उच्छ्वास, दीर्घ उच्छ्वास]

मिनी—अच्छा यह क्या ? मिताकी याद भूल जा वरना देखता है न वे आगकी लपटे ? भूल गया दिनकी मार ?

मुरल—[काँप जाता है] नहीं, नहीं, यह मिताकी याद नहीं है मिनी । सच कहता हूँ मिनी ।

मिनी—[आँखें तरेरकर] अच्छा, दे सबूत फिर इसका । उठ, निकल ।

मुरल—[काँपता हुआ] क्या करूँ ?

मिनी—उठा मशाल, उठा हथौड़ा । चला जा मितीकी गुफामे । तोड़ ला उसका सिर । मुझे उमका सिर चाहिए, जा ।

मुरल—मिनी ।

मिनी—[आँखें तरेरकर] जाता है या नहीं ? चीतल, महिष ।

मुरल—[काँपता हुआ] जाता हूँ, जाता हूँ । [लडखडाता हुआ उठता है, एक हाथमे हथौड़ा दूसरेमे मशाल लेता है । चला जाता है ।]

मिनी—[धीरे-धीरे] आदमीकी औलाद । कायर ।

[और चीतलको खीचकर गोदमे दुधका लेती है । महिष आग सम्हालता रहता है ।]

अङ्क—२ । दृश्य ?

[दस हजार साल बाद । जनका गाँव लूट चुका है । मर्द फरसोके घाट उतारे जा चुके हैं । बूढ़े आगकी लपटोके सुपुर्द हो चुके हैं । औरतें एक ओर बँधी पड़ी हैं । विजेता सरदार अपने योद्धाओंके साथ आता है, नारियोको बाँटता है ।]

सरदार—आह, क्या रूप है ! भेजो इसे मेरे कोटमे, और उमे भी । और वह उस कुन्तल केशिनीको भी, जैसे दूधसे नहाकर निकली है ! और देख, कुरग, उमे तू ले ले, उम मृगाक्षीको । देयता है न, उसकी भवोका वक ?

कुरग—सौभाग्य, सरदार !

सरदार—गयन्द !

गयन्द—स्वामी !

सरदार—इधर क्या देखता है, उधर देख, उम पिगलाको । ले ले, और देख, जोगाकर रखना, मन लपका जा रहा है ।

गयन्द—ले लें, सरदार ! कोटमे इसे भी रख ले ।

सरदार—नहीं, तेरी जीतकी उपहार है, वहाँ घमामानके बीच देया था, तेरी भुजासे लटक गई थी । तुझे वर लिया है उमने ।

गयन्द—अच्छा, स्वामी, जोगाकर रखूँगा, जब चाहो, पधारो ।

दृश्य २

सरदार—यह कपिला निमकी है ?

कोरक—मेरी, पिता । आपने ही तो दी थी ।

सरदार—बड़े भाग्यवान् हो ! उसकी आँखोमे तो जैसे निन्दु उमटा पड़ता है । आज रात उमे मेरे द्वार भेजना ।

कोरक—जैसी आज्ञा, पिता ।

सरदार—और वह कौन है, वह कजरारी आँखों वाली, जो केशोका जल
निचोड़ रही है ?

कोरक—वह भाईकी है ।

सरदार—तुन्दिलकी ? [हँसता है] तुन्दिलका उस तन्त्रीको क्या सुख ?
कहना उससे, कल वही मेरी परिचर्या करेगी ।

[दोनोंका प्रस्थान]

[कपिला और कजरीका प्रवेश, चरखा कातते हुए]

कपिला—सुना, वहिन ?

कजरी—क्या, वहिन ?

कपिला—आज मुझे पिताके द्वार जाना है ।

कजरी—सुना । कल मुझे भी वही सेवा करनी है ।

कपिला—यह नारीका जीवन क्या है, सखि ?

कजरी—हाँ, वहिन, मनचीतेका साया भी हट जाता है । मेरा तुन्दिल तो
तड़प जायेगा ।

कपिला—मेरा कोरक रो रहा था, सखि । पर कोई उपाय नहीं है ।
पुरुषको इच्छापर ही अपना जीवन निर्भर करता है । उसकी सेवा
और सन्तान ।

कजरी—[आँखें पोंछती हुई] देखे, अब वहाँसे लौट भी पाते हैं या नहीं ।

अक—३ । दृश्य—?

[चार हजार साल पहले । वैदिक कालमें । विवाह प्रथाके
पूर्व । ऋषि पढ़ा रहा है, ब्रह्मचारी पढ़ रहे हैं । ऋषिपत्नी
सोमवल्ली घूट रही है । दूसरा ऋषि आता है, ऋषिपत्नीका हाथ
पकड़ एक ओर चला जाता है । ऋषिकुमार तमतमाकर खड़ा
हो जाता है ।]

कुमार—अनाचार, प्रभो !

ऋषि—वैठो । बैठ जाओ । मन्त्र कहो ।

कुमार—आश्रममे पाप प्रगटा है, पिता । मन्त्र अपावन हो जायगा ।

ऋषि—कैसा पाप, कुमार ? अपचार कैसा ?

कुमार—पाप, पिता, अपनी इन्ही आँखों देखा था, यही मुनि आया था और माता हँसती हुई इसके साथ चली गयी थी । मैंने पीछा किया था । पिता, मन्त्र अपनी आँखों देखा था ।

ऋषि—मूर्ख, वह पाप नहीं, ननातन नियम है । नारी क्षेत्र है, क्षेत्र एका नहीं होता, मार्वजनिक होता है, गोचर भूमिकी तरह ।

कुमार—नहीं, पिता । यह नियम चाहे कितना भी मनातन क्यों न हो, टूटेगा । मैं इसे तोड़कर रहूँगा । इस पशुजीवनका समाधान वस एक क्रिया है—विवाह, आवाह । चला अब इसके प्रचारके हित । रखो तुम अपना यह मन्त्र-याग । विदा ।

[मस्तक झुकाकर चल देता है]

दृश्य—२

[इन्द्राणी और वाक् बैठी बातें कर रही हैं । शालीन शचीके किरीटसे उसकी कुतल-कचराशि निकलकर दोनों और लहरा रही है । रह-रहकर उसके स्वर्ण कुण्डल केशोंके बीच दमक जाते हैं । वाक्की कुटिल भवें उसके सयत सौंदर्यमे जंमे लुब्धक भौरोंको सचेत कर रही हैं ।]

इन्द्राणी—अह केतुरह मूर्धा अहमुग्राविवाचिनी ।—आज मेरी व्यजा फटग रही है, मेरी आज्ञा अनुल्लघनीय है, मेरी गरिमाकी देवगण मोगन खाते हैं ।

वाक्—पौलोमीकी शक्ति निस्मन्देह प्रबल है । इन्द्रका पौरुष महान् है ।

इन्द्राणी—मेरी कन्याएँ रानियाँ हैं, मेरे पुत्र शक्तिमान हैं । मैं अजेय हूँ ।

इन्द्रका पौरुष मेरी हविसे शक्ति पाता है । मेरी सपत्नियाँ ध्वस्त हो चुकी हैं ।

वाक्—सपत्नियाँ ! वही तो नारीकी विडम्बना है । वरना कैकेयीने रथकी धुरी धारण की है, मुद्गलाने लौहकी राने धारण की है । पर रथ वह पतिका है, मैदान वह स्वामीका है ।

इन्द्राणी—जनेऊ धारणकर यज्ञमे नारी बैठती है, मैं स्वयं हविमे भाग पाती हूँ, यज्ञका संचालन करती हूँ ।

वाक्—नही, पर अर्द्धाङ्गिनी रूपमे, पतिके अभावमे नही, अपने अधिकारसे नही । इन्द्रको हटा दो, अपने गौरवको गुनो फिर ।

[इन्द्राणीका क्षुब्ध प्रस्थान । सूर्याका प्रवेश]

वाक्—स्वागत, सूर्ये ! सोमकी अकशायिनि, पधारो !

सूर्या—अभिवादन, वागम्मृणि । आई नही यज्ञमे ।

वाक्—नही आ सकी, सूर्ये, उस निरर्थक यज्ञमे ।

सूर्या—विवाह-यज्ञ निरर्थक, देवि ? सुना नही वह आशीर्वचन ?

वाक्—सुना वह पुरोधाका आशीर्वचन, सूर्ये, सुना—ससुरकी सम्राज्ञी वन, सासकी सम्राज्ञी वन, देवरो-नन्दोकी सम्राज्ञी वन, दोपायो-चौपायोकी सम्राज्ञी वन, उपस्थित जनोको आदेश कर । सुना, सब सुना । इन सबकी सम्राज्ञीके ऊपर सम्राट्का अकुश है, अनुल्लघनीय अनुशासन । भोगो उसे, सूर्ये, अविकल भोगो ।

सूर्या—मुनिकन्ये, व्यग न करो । कौमार्यको कुण्ठित न करो । कोरककी परिणति कोष खोलकर मकरन्द लुटा देनेमें है ।

वाक्—सही, पर उसकी शालीनता अपने सौरभका स्वामी दूसरेको बना देनेमे भी नही है । मैं तो अपनी सत्ताकी पोषिणी हूँ—अह रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विपे शरवे हन्तवाऊ—रुद्रका धनुष धारण करती हूँ कि ब्रह्मद्वेपियोका दलन कर सकूँ । सेनाओको रणभूमिमे खींच

लाती हूँ कि ममर्दमे दिगाएँ काँप उठे । सूर्यको आकाशकी मूर्तों पर घसीट लाती हूँ कि घरा तप उठे, हिम गल जाय, पक मूय जाय, जीवन जग उठे ।

सूर्या—लहको, एकाकिनि, उहो, अपने ही गौरवकी आँचमे । चली मैं तो सोमकी शीतल छायामे, उमकी कौमुदी वन अन्तरिक्षमे उमल विस्तार करने । विदा ।

[प्रस्थान । वाक् व्यगभरी दृष्टिसे जाती हुई सूर्याको चुपचाप देखती रहती है ।]

दृश्य—३

[उत्तर वैदिक काल । ब्राह्मण-उपनिषदोंका जीवन । मिथिलामे विदेह जनककी राजनभा । ज्ञान-सबबी तर्क हो रहा है । सहस्र गीर्ण सोनेसे मण्डित सींगों वाली विजेता ऋषिके लिए खड़ी भूम रही हैं । सब ऋषि याज्ञवल्क्यसे पराम्त हो चुके हैं, केवल गार्गी जूझ रही है ।]

गार्गी—मैं आपसे दो प्रश्न पूछती हूँ, भगवन् । यदि आपने मेरे इन प्रश्नोंके समुचित उत्तर दे दिये तो आपको इस ब्रह्मलोकमे कोई जीत न सकेगा ।

याज्ञ०—पूछ गार्गी, वाचकनवी पूछ ।

गार्गी—यह जो ऊपर द्यौ मे, यह नीचे जो पृथ्वीपर, और यह जो द्यावा पृथ्वी दोनोंके बीच हुआ है (स्थित रहा है), है, या होनेवाला है वह किममें ओत-प्रोत है ?

याज्ञ०—यह जो ऊपर द्यौ मे, गार्गी, यह नीचे जो पृथ्वीपर, और यह जो द्यावा पृथ्वी दोनोंके बीच हुआ है, है, या होनेवाला है, वह आकाशमे ओत-प्रोत है ।

गार्गी—नमस्कार है तुमको, याज्ञवल्क्य, अब यह दूसरा प्रश्न करती हूँ ।

धारण करो, सम्हालो, उत्तर दो ।

याज्ञ०—पूछो, गार्गी, अपना प्रश्न ।

[गार्गी पूछती है, याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं ।]

गार्गी—ब्राह्मणो, याज्ञवल्क्यको नमस्कार करो, वही हम सबमे बहुमान्य है । छोड़ो उसे, वही इन ब्रह्मोद्यमे विजयी है ।

[प्रस्थान]

दृश्य ४

[आश्रम । कुलपतिके समक्ष जावाल करमे समिधा लिये ऋषि-
कुमारोके बीच खड़ा है ।]

कुलपति—क्या नाम है ? क्या वर्ण है, कुमार, तुम्हारा ? क्या गोत्र है ?

जावाल—जावाल, भगवान् 'समित्पाणी' होनेकी आज्ञा करे, विदग्ध-मार्ग
की दीक्षा दे ।

कुल०—वर्ण बोलो, कुमार, गोत्र बोलो ।

जावाल—नहीं जानता भगवन् । पर समित्पाणी होनेकी भगवान्
जाना करे ।

कुल०—कैसे समित्पाणी होनेकी आज्ञा कहूँ, कैसे विदग्ध-मार्गमे दीक्षित
करूँ ? ब्रह्म-क्षत्र तक ही तो उनकी परिधि है । कैसे जानूँ, तू
ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, इनसे परे है ? जा, जननीसे पूछ ।

[जावाल नतमस्तक हो चला जाता है । जननीके चरण छू
पूछता है ।]

जावाल—माँ, मेरा वर्ण क्या है, गोत्र क्या है, मेरा पिता कौन है ? इनको
बिना जाने कुलपति समित्पाणी होनेकी आज्ञा कैसे करे, विदग्ध-
मार्गकी दीक्षा कैसे दे ?

माता—पुत्रक, कैसे बताऊँ ? मैं स्वयं भी तो नहीं जानती । तब मैं कुमारी थी, पिताके अतिथिसकुल परिवारमें सत्कारार्थ प्रयुक्त एकमात्र दुहिता । स्मरण नहीं उस रात किम महानुभावकी छाया इस क्षेत्रपर पड़ी, जिसके पुण्यके प्रताप स्वरूप तुम उदय हुए ।

[जावाल नतमस्तक हो चुपचाप कुलपतिके निकट नचा जाता है ।]

जावाल—भगवन्, जननी मेरे पिताको नहीं जानती, मेरा वर्ण नहीं जानती, गोत्र नहीं जानती । पूछा तो उसने कहा—‘पुत्रक, कैसे बताऊँ ? मैं स्वयं भी तो नहीं जानती । तब मैं कुमारी थी, पिताके अतिथिसकुल परिवारमें सत्कारार्थ प्रयुक्त एकमात्र दुहिता । स्मरण नहीं उस रात किम महानुभावकी छाया इस क्षेत्रपर पड़ी, जिसके पुण्यके प्रताप स्वरूप तुम उदय हुए ।’

कुल०—तुमने माताके सत्य वचन ज्योंके त्यों कहे, जावाल, निम्नन्देह ब्राह्मण हो तुम । ‘सत्यकाम’ तुम्हें आजसे कहूँगा । समित्पाणी हो, सत्यकाम जावाल, विदग्ध-मार्गपर आरुढ़ हो, आओ ।

[समिधामें अग्नि लगा देता है । प्रस्थान]

अंक-४ । दृश्य-१

[तीन सौ साल बाद । सावत्थीके जेतवन विहारमें तथागत वरसात बिता रहे हैं । आस-पास आनन्द आदि शिष्य बैठे हैं, सामने भिक्षु-सघ, गृहस्थ-उपासकका उपदेश समाप्त होता है । द्वारका भिक्षु आकर आनन्दके कानमें कुछ कहता है । आनन्द उसके साथ बाहर चला जाता है । द्वारपर बुद्धकी मौसी प्रजापती और आनन्द ।]

आनन्द—प्रसन्न हुआ, देवि । धन्य जो दर्शन पाये ।

प्रजा०—निवेदन करो, भन्ते । आज सधमे प्रवेश करके ही रहूँगी ।

आनन्द—निवेदन करता हूँ, माता, अभी करता हूँ सदा करता रहा हूँ,
पर तयागत उदासीन है, नारीको प्रव्रज्या नहीं देगे ।

प्रजा०—आज मैं यहाँसे नहीं हिलनेकी, भन्ते । वर्षा-आँधी झेलती आयी
हूँ, कपिलवस्तुसे । निवेदन करो—प्रजापती आज यही प्राणत्याग
करेगी, सुगतने यदि अनुकम्पा न की, सधमे दीक्षित नहीं किया ।
निवेदन करो ।

आनन्द—अभी, देवि, अभी निवेदन करता हूँ ।

[प्रस्थान, बुद्धके निकट जाकर चुपचाप खड़ा हो जाता है ।]

बुद्ध—बोलो, आनन्द, कुछ कहना इष्ट है ?

आनन्द—सुगत प्रसन्न हो ।

बुद्ध—बोलो, आनन्द, नारीका पक्ष लेकर आये हो ।

आनन्द—सत्य, सुगत प्रसन्न हो ।

बुद्ध—नारी, आनन्द, जलमे तैरती मछलीकी भाँति अजेय है । नारी दस्यु-
सौ प्रवञ्चिका है, कला-कुशला । सत्यसे वह दूर है । उसके लिए
सत्य मिथ्या है, आनन्द, मिथ्या सत्य है ।

आनन्द—पर यह तो महाप्रजापती है जो सधकी कामना करती है, जननी
है, नारियोमे देवी है, सुगतकी पालिका । प्रसन्न हो सुगत ।

बुद्ध—सदासे महाप्रजापतीका पक्ष लेते रहे हो, आनन्द ।

आनन्द—सुगत अनुकम्पा करें ।

[बुद्ध चुप है । आनन्द जानता है, बुद्ध स्वीकृति मौनसे देते हैं ।
प्रसन्न हो उठता है ।]

आनन्द—यन्य, सुगत, धन्य । सुगत मौन है, सुगत प्रसन्न है ।

बुद्ध—किन्तु सुनो, आनन्द—जैसे धानके खेतमे जब रोग फूट पड़ता है तब
धानके खेतकी शक्ति नष्ट हो जाती है, वैसे ही, आनन्द, जब

नारियाँ सद्धर्ममें दीक्षित होगी, प्रव्रजित होकर भवमें प्रवेश करेगी तब पवित्र जीवन धीण हो जायेगा । तयागतके चलाये सद्धर्म और भवमें यदि नारी दीक्षित न होती, तब, आनन्द सद्धर्म सहस्र वर्ष तक जीवित रहता, किन्तु, आनन्द अब भव दीर्घकाष्ठ तक जीवित न रह सकेगा, सद्धर्म केवल पाँच सौ वर्ष चलेगा ।

[मौन । आनन्दका प्रस्थान]

दृश्य—२

१ धर्माचार्य—वर्ण-धर्म मिट गया, मनुकी व्यवस्था गतप्राय है । नया विधान होगा, मनुके अनुकूल ही ।

२ धर्माचार्य—करो, मुनि, निश्चय करो वरना आर्यभूमि म्लेच्छोंमें आक्रान्त है । यवनोंने पार्थिवोंको नष्ट कर दिया है, प्रान्ताको विच्छिन्न । शूद्र ब्राह्मण है, ब्राह्मण शूद्र । वर्ण-धर्म मिट चला ।

३-४ धर्माचार्य [एक साथ]—सत्य है, सत्य ।

१ धर्माचार्य—बालविवाहकी मर्यादा स्थापित करो । पिता अपनी अनेक कन्याओंका पत्नी और पुत्रोंके साथ इस त्रिप्लवमें रक्षा न कर सकेगा, केवल पति उसको रक्षा कर सकेगा, इसमें कन्याओं शीघ्रातिशीघ्र पत्नी होने दो—अष्टवर्षा भवेद् गौरी—कन्याण तभी होगा । बोलो, मान्य है ?

सभी [एक साथ]—मान्य है, आचार्य, मान्य है ।

१ धर्माचार्य—बोलो, ब्राह्मण सम्राट् पुण्यमित्रकी जय ।

सभी [एक साथ]—जय ! सम्राट् पुण्यमित्रकी जय ।

[प्रस्थान] पटाक्षेप

अंक-५ । दृश्य-१

[पाँच सौ वर्ष बाद । गुप्तकाल । पाटलिपुत्रका प्रासाद । ध्रुव-
स्वामिनी प्रसाधन कर रही है, दो दासियाँ उसकी सहायता
कर रही हैं, तीसरी वीणाके स्वर लहरा रही है, एक और
रगासे भरी कटोरियाँ पड़ी हैं ।]

ध्रुव०—वर्तिकाका रग तनिक हल्की करले, मणि, आलता कुछ अधिक
चढ़ गई है । होठ मुझे गाढ़े लाल नहीं रुचते ।

मणि—कर ली है, देवि । लोध्र वरना, जानती हूँ, दब जायेगा ।

ध्रुव०—और माले । तूलिका तनिक दबा कर चला । रोगटे खड़े हुए जा
रहे हैं । अग-अग सिहर उठा ।

[माला स्तनोपर राग-रेखाएँ खींच देती है, लाल रेखाओंके
भीतर चदनकी श्वेत रेखाएँ, वृत्ताकार, निरन्तर छोटे होते आते
रेखावृत्त, बीचमें शिखरपर एकाकी धवल विटु ।]

ध्रुव०—हाँ, तनिक हल्के, मणि । पर, देख अधरकी इस खड़ी अर्ध रेखाको
तनिक और गहरी करदे । हाँ, देख अब चिबुककूपसे लहराती
विशेषककी टहनियाँ अवरोकी ललाईसे और दमक उठी हैं ।
ललाटकी भक्ति-रेखाएँ जहाँ कानोंके निकट उन टहनियोंको छूती
हैं वही नयनोंकी कजरारी रेखा समाप्त होती है । वम ठीक ।

माला—कोमल । कोमल ।

[मस्तकपर स्वर्ण थालमे फूलोंके गजरे और हार धरे वामन
कोमलका प्रवेश ।]

कोमल—आया, माले, आया ।

[ध्रुवस्वामिनीके निकट आकर खड़ा हो जाता है । माला
और मणि रानीका पुष्प-मण्डन करने लगती हैं । कलाइयोंको,

कटिको, चूडाको, गजरोमे सजा देती हैं । गलेमे विपुल मोतियो
की एकावली है, तनपर हसचिह्नित दुकूल फव्र उठता है ।]

मणि—सौभाग्य चमके, देवि ।

माला—क्लीवकी छाया मिटे ।

मणि—पुनर्भूका चन्द्र चमके ।

[ध्रुवस्वामिनी राजगतिमे द्वारकी ओर बढ़ती है । वीणावादिनी
गाती है—]

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाचरोष्ठो,
मव्ये क्षामा चरितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्यैव धातु ॥

अंक ६

[राजपूत काल । चित्तौडगढ़ । अलाउद्दीन परकोटेके नीचे है ।
राजपूत केसरिया धारण कर चुके हैं । पद्मिनी सरदारोंकी
पत्नियोंसे घिरी हैं । दरबारका दूत पूछने आया है, पद्मिनी
क्या करेंगी ? राजपूतनियाँ क्या करेंगी ?]

पद्मिनी—जोहर, दूत, दरबारसे कह दो, जोहर होगा । केसरिया छायामें
डोलने वाली ललनाओने पुष्पगय्याकी कामना कब की ? चन्दनकी
राग-रेखाएँ जीवनमें उनका प्रमाणन करती हैं, चन्दनकी लहरी
चितापर उनका अन्त्य मण्डन होगी ।

दूत—धन्य, रानी, धन्य ।

पद्मिनी—[एकत्र राजपूतनियोंसे] मनी प्रार्थना प्रथा है मानिनी नागिया-
की । राजपूतनियोंने उस एकाकी मृत्युको सामूहिक बल दिया है ।

जौहरका बल । वोला, स्वीकार है तुम्हे वह बलिदान ?
सैकड़ो पात्र—[एक साथ]—स्वीकार है ।

पद्मिनी—देखो—कोई तुम्हे चितारोहणके लिए विवश नहीं करता । जो
इस यज्ञके लिए तैयार न हो वह निर्भय चली जाय ।

[सब चुप है । एक आवाज नहीं होती ।]

[सब जाती है ।]

पद्मिनी—कान्ता, चन्दनकी चिता चुनवा दे, किलेकी बुजियोके नीचे
मैदानमे । सतियोकी राखसे उन बुजियोके शालीन शिखर पवित्र
होगे । चलो ।

[सब जाती है ।]

दृश्य २

[मेवाडका कोट । राजप्रासादका एक कोना । सीरा करताल
लिये खड़ी है । राणा कुपित है ।]

राणा—चली जाओ, रानी, जब तुम कुल-धर्म नहीं निवाह सकती ।

सीरा—चली जाऊँगी, राणा । निश्चय चली जाऊँगी । माता-पिताने तुम्हे
तन दान कर दिया । ले लो मेरा यह तन । भोगो इसे, चाहो, नष्ट
कर दो, तुम्हारा है । पर मन तो मेरा है, राणा । उसे कौन तुम्हे
दे सका ? वह तो मदा मेरा रहा है, मेरे गिरिधर गोपालका ।
वह तुम्हे कैसे दे दूँ ? एक बार उसे गिरिधरको देकर फिर तुम्हे
कैसे दूँ ?

राणा—[कापती आवाजमे] जाओ, चली जाओ । राजसे बाहर चली
जाओ ।

कर ली है—चाहे तो बड़ा आदमी हो सकता है। तब क्या फूफी को कुछ न देगा ! इसलिए इस आदमी को हाथ में रखने से लाभ है।

फूफी ने अशर्मा उठाकर कहा—“यह कौन-सी बड़ी बात है, बेटा ! तुम्हारी लड़की को पालकर उथानी करना कोई बड़ा काम नहीं। तुम निश्चिन्त रहो बेटा।” कहकर फूफी ने कन्या को गोद में उठा लिया।

कन्या के बारे में ऐसा बन्दोबस्त हो जाने पर माणिकलाल निश्चिन्त हो गाँव से बाहर निकला। किसी से कुछ न कह कर वह रूपनगर जानेवाली सड़क पर चल पड़ा।

माणिकलाल विचार कर रहा था—इस पहाड़ी अधिराज्य में इतने सवार क्यों आये थे। यहाँ राणा भी अकेले घूम रहे थे। किन्तु उदयपुर से आकेले राणा के यहाँ आने की सम्भावना नहीं। तब ये मन राणा के साथ के ही वार है। इसके बाद दिग्गड़ देता है कि ये लोग उत्तर से आये उदयपुर। और जा रहे थे, शायद राणा शिघार या वन-विहार के लिए निकले हों और फिर उदयपुर लौट रहे हों। इसके बाद दिग्गड़ दे रहा है कि ये लोग उदयपुर नहीं गये। फिर उत्तर की ही क्यों गये ? उत्तर की तरफ तो रूपनगर है। जान पड़ता है कि चंचलकुमारी का पत पाकर राणा अपने सवारों की सैन्य के साथ उनका निमन्त्रण स्वीकार करने गये हैं। अगर वे न गये तो उनका राजपूत नाम मिथ्या है। मैं उनका नीर दूँ, मुझे उनके पास जाना ही चाहिये, किन्तु वे लोग बाड़े में गये हैं और नर पैदल जाने में डर होगी। फिर भी एक भरोसा है, पहाड़ी रास्ते में बाड़े उन्नीसवीं से न सा सार्के और मैं पैदल चलने में तेज हूँ। माणिकलाल दिन-रात चलने लगा। यथामय वह रूपनगर पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि रूपनगर में दो हजार मुगल सवारों ने आकर छावनी डाल दी है, किन्तु राणा सेना का कोई निशान दिग्गड़ नहीं देता। उसने और भी सुना कि दूसरे दिन मुगल-सैन्य चंचलकुमारी को लेकर जायगी।

माणिकलाल बुढ़ि में एक छोटा मेतापति था। राजपूतों का पता न था। वह कुछ भी दुखी न हुआ। उसने मन-ही-मन कहा—“मुगल उठा कर न सँगे, किन्तु मैं अपने प्रभु का पता तो लगा लूँ।”

दृश्य २

[मिट्टीका घर । युवती विधवा । सैला-कुचैला वस्त्र पहने,
पर रूपकी प्रतिमा ।]

विधवा—कितना कठिन है जीवन । इससे अच्छा तो मर जाना ही रहता ।
सती हो गयी होती तो कमसे कम नाम-जस तो मिलता । पर मर
कर नाम-जस ही कौन भोगता ?

साधुनी—विधवाका जीवन बड़े अभागका है, सच, बड़ा कठिन है ।

विधवा—समाजके ठेकेदार अस्मत्पर नज़र डालते हैं । घरवाले चाहते
हैं कि कही चली जाय, कही मुँह काला करले ।

साधुनी—मनको सम्हालो, मनमें साहस भरो ।

विधवा—कैसे सम्हालूँ, मनको ? कैसे साहस भरूँ ? सभी ओर शत्रु है ।
आहार तक नहीं मिल पाता ।

साधुनी—प्रधानजीके पास गयी थी ?

विधवा—चूल्हेमें जाय तुम्हारा प्रधान । मतलब भरो आँखोंसे देखता है
नीच । रोज़ लेक्चर फटकारता है—जहाँ नारियोंकी पूजा होती
है वहाँ देवता रमते हैं । उसके देवता भी वैसे ही होंगे ।

[भारतीय नारी सभाकी मन्त्राणीका प्रवेश ।]

मन्त्राणी—कुन्ती किसका नाम है ?

विधवा—मेरा । [उठकर खड़ी हो जाती है]

मन्त्राणी—तुमने ही अभी 'अर्जो' भेजी थी ?

विधवा—हाँ, मैंने ही ।

मन्त्राणी—काम इस तरह नहीं बननेका । आन्दोलन करना होगा । अपने
अधिकारोंके लिए लड़ना होगा ।

विधवा—लड़ूंगी । पर अकेली लड़ूंगी भी कैसे ? सब तो दुश्मन ही हैं ।

मंत्राणी—नही, मित्रोंकी कमी नहीं है । सत्यका सहायक सत्य स्वयं होता है । अपनी आत्माका उद्धार अपने आप करना होगा । वैसे सैकड़ो-हजारो विधवाओ, उपेक्षितो, दलितोका परिवार तुम्हारे साथ है । चलो, उनमें शामिल हो । अपना अधिकार लाभ करो ।

[दोनों चली जाती हैं ।]

दृश्य २

नेता—मैं कहता हूँ, शान्तिसे काम लो, आन्दोलनसे कुछ न होगा ।

मंत्राणी—मैं नारी-समाजकी ओरसे आपको दोषी ठहराती हूँ, जो हमारे प्रतिनिधि होकर हमारी पेशवाई नहीं करते ।

नेता—क्या तुम्हें मत देनेका अधिकार हमने नहीं दिया है ? तुम धारा-सभाओ के लिए नहीं खड़ी हो सकती ? सरकारकी मंत्राणी नहीं हो सकती ?

मंत्राणी—यह सब छलावा है । मैं एम. ए. हूँ, हजारोंमें बोलती हूँ, पर अपने पुत्रकी अभिभावक (गार्जियन) तक नहीं हो सकती । यह कैसा अधिकार है ? जब निरक्षर पिता अभिभावक हो सकता है ? नहीं, नहीं, राजनीतिक अधिकारका कोई अर्थ नहीं होता जब तक कि आर्थिक स्वतन्त्रता न हो । ना, हम सब बन्धनमें हैं । भला हिन्दू कोड बिल क्यों नहीं पार करवाते ?

नेता—हिन्दू कोड बिल कोई अच्छी चीज नहीं है । तुम उसे समझती नहीं । हिन्दू परिवार बिखर जायेगा ।

मंत्राणी—उसे क्या समाजके शत्रुओंने खड़ा किया है ? उसकी योजना बनानेवाले क्या हिन्दू नहीं हैं ? उनके क्या बेटियाँ नहीं हैं ? वे पढ़ बेटे हो हैं ? और भला हिन्दू-परिवार क्या चिरकालमें एक है ? बिखरता नहीं आया है ? यह कैसा ठोस है !

नेता—देखो, हिन्दू कोड विलसे बाहरका आदमी घरमे पेठ आयेगा । बात-को नमझो ।

मन्त्राणी—उसका डर क्या है ? सम्पत्तिका बँटवारा ही तो होगा । उसके बिना रहते बँटवारा क्या नहीं होता ? अब मान लो दो-से-तीन हो जायेंगे । और अलग हो जानेपर मित्र-शत्रु कैसे ? जैसे दो भाई अलग-अलग वैसे ही दो भाई और एक बहिन तीनों अलग-अलग । अब यह फरेव रहने दो । नैतिकताकी आडमे शिकार न खेलो । खैर, तुम अपाहिजोसे अपना काम न बनेगा । चली, देशकी जनताके सामने अपनी माँग रखने । वही निर्णय करेगी । मुबारक तुम्हे तुम्हारी नेतागिरी ।

[चली जाती है ।]

दृश्य ४

[राष्ट्र-संघकी मानवीयता समितिमे । राष्ट्र-संघकी अध्यक्ष नारी बैठी है । नारी बोल रही है ।]

नारी—हमे हमारा नारीत्व चाहिए । हम 'देवी' नहीं होना चाहते । हमें पूजाकी वस्तु होनेसे नफरत है । हम चाहते हैं पुरुषका वास्तविक अर्धाङ्ग होना । उसके कन्धेसे कन्धा मिलाकर मानवीय समस्याओंको सुलझा सकनेका अधिकार, वस । हम इन्मान हैं, इन्मानियतसे बटकर धरापर कोई वस्तु नहीं । हम इन्मानियतके दावेदार हैं । हमें राष्ट्र-संघ इन्मान बननेमे सहायता करे ।

अध्यक्ष—[राष्ट्र-मघ नर-नारीका भेद नहीं करेगा, जैसे धर्म-धर्ममें, जन-जनमें वह भेद नहीं करता । इन्सानके लिए इन्सानियतकी विरासत बख्खना ही उसकी एकमात्र कामना है । इन्सानको उसका हक हासिल हो ।

[पटाक्षेप]

शाही मजूर

1

2

3

वाचक—फरगनाकी हरी घाटी तैमूरने जीतकर अपने वंशजोंकी विरासत कर दी थी। परन्तु तैमूरिया खानदानके पिछले बादशाह उसे सम्हाल न सके। वह उनके हाथसे निकल गया। बाबरने बार बार समर-कन्दकी सल्तनत जीतो और खोयी और अन्तमें उसने काबुल और हिन्द जीत वहाँ डेरा डाला। फिर भी मरते दम फरगना जीतनेकी उसकी हविस न मिटी। उसे वह अपनी औलादकी रगोमें ढालता गया और मुगलिया खानदानके, हुमायूँसे शाहजहाँ तक, एकके बाद एक, सभी बादशाह वखाँ [वधु, वक्षाव, ग्रामू] की केसरकी क्यारियों वाली हरी-भरी घाटी बलखको जीतनेके निरन्तर प्रयास करते रहे। शाहजहाँने भी जीतनेकी कोशिश की। बीस करोड़ रुपये उन युद्धोंमें खर्च किये। कभी एक शाहजादेको भेजा, कभी दूसरेको। एक बार जब उसने औरंगजेबको वहाँ भेजा तब वही, बदरगनाकी घाटीमें —

वाचिका—सुन्दर डकहरा छरहरा बदन, गोरा-भभकता चेहरा, बाल पीछे लौटे हुए, चिकनी स्याह हल्की डाढ़ी, चेहरा हाथोंपर नीचे झुका हुआ, बायें हाथमें गोल सफेद छोटी टोपी जिसकी निचली चौड़ी नतहपर दाहिने हाथकी मुई तेज चलती जा रही है, अभिराम महीन डिजाइने कढ़ती जा रही है। तीमरा पहर हो चला है, चारों ओर फौजका पहरा है, तीन दिनोंसे लड़ाई रात-दिन चलती रही है, आज दोपहरको दुश्मन पीछे हटा है, दम लेनेको फुरसत मिली है, सेनापति कमर खोल आराम कर रहे हैं। फिर भी फौज मुस्तैद है। कातिल बेगोका क्या ठिकाना, कब मौतका पैगाम लिये आ पहुँचे। [शिदिरके द्वारमें किसीकी छाया डोलती है। मुई रोक टोपीसे नजर उठा खूबसूरत छरहरा नौजवान

औरङ्गजेब उधर देखता है । गुलाम दोबारा मुजरा करता है]
 औरंग०—[गम्भीर आवाजमें] क्या खबर है मंसूर ?

मंसूर—हवाएँ खामोश हैं, मालिक । परिन्दे दोने पाकके पैगाम ले आलममें फैल गये हैं ।

औरंग०—नहीं, मंसूर, उसे छोड़, रोजगारकी बात कर ।

मंसूर—बन्दा बाजारसे ही लीटा है, मेरे आका । [तीन रुपये सामने रख देता है ।]

औरंग०—अच्छा तीन रुपये । एक टोपीके लिए कुछ बुरे नहीं ।

मंसूर—[व्यग्यपूर्वक] कुछ बुरे नहीं, गरीबपरवर । आलमपनाह, शाहोके शाह, दिल्लीके मुगलिया आफताब शाहजहाँके शाहजादेके लिए तीन रुपये खासी दौलत है ।

[गुलामकी बूढ़ी कांपती आवाज आसुओके साथ ।]

[औरंगजेब हँसता है । टोपी नीचे रख देता है ।]

औरंग०—जी छोटा न कर, मंसूर । मुझसे कोई बढ़कर नहीं । दिल्लीकी शानोशौकत इन टाँकोके फन्दोमें झूलती है । मुझे किस बातकी कमी है जिससे तू बेचैन हो जाया करता है, भला ?

मंसूर—खुदा समझेगा, मेरे मालिक, इस कुर्बानीको, इस ग्राही फीरीगीतो ।

[बूढ़ेका गला और भी भर आता है ।]

और०—बाजार दूर है, मंसूर ?

मंसूर—पाम, बिलकुल पास, मालिक । फीजोंकी आगिरी गार्ड पार, बग यहाँसे मोल भरपर । और बाजार क्या है, दो चार गेमेदार दुकाने हैं जहाँ लोग बेचते भी हैं, खरीदते भी हैं ।

और०—और खतरोंमें डरते नहीं ?

मंसूर—बेगके सिपाही उन्हें नहीं छूते, गरीबनेवाज । अपने लोगोमें भी उन्हें डर नहीं । घण्टे भरमें माल बेच-खरीद कर वे डेरा-उड़ा उड़ा लेते हैं । पर मैं तो कहता हूँ [चुप हो जाता है ।]

औरग०—वेग इन्साफपसन्द है, मसूर। लोग सच कहते हैं।

मसूर—सही, मालिक, पर मेरी बात टाल दी बन्दानेवाजने।

[नौजवान निगाह सामने डालता है, दरवाजेकी ओर जहाँ दूर गर्द उड़ रही है।]

मसूर—मैं तो कहता हूँ—[औरगजेबकी आँखें उसके चेहरेपर लौट पड़ती हैं।]

औरग०—क्या कहते हो, मसूर? यह तो तुम सदा ही कहते आये हो। पर मुझे जो वह मजूर नहीं। मानता हूँ कि मेरा नाम ले लेनेसे सरहिन्दके बाजारोमे इन टोपियोंकी कीमत हजारगुनी हो जायगी। गाहजादेकी बनाई टोपी पहननेका गुरुर किसे न होगा? पर ना, ऐसा नहीं होनेका। ऐसा ही होना होता तो क्या दकनके खजानेमे दौलतकी कमी थी जो उँगलियोंमे सुई भोंकता, आँखोंकी बेवक्त रोशनी छीनता? क्या दिल्लोमे, बगालमे, गुजरात और मालवामे यही नहीं हो रहा है? पर ना, औरगजेबके लिए वह हराम है। हलाल बस इस हाथकी कमाई है। [चेहरा फिर नीचे टोपीपर झुक जाता है। एक हाथसे टोपी उठा लेता है दूसरेसे सुई। सुई टपाटप चलने लगती है।]

[गुलाम लमहे भर खड़ा रहता है फिर सलाम करता चुपचाप शिविरसे बाहर निकल जाता है।]

[औरगजेबकी आवाज़ अभी शिविरमे गूँज ही रही है कि डके-पर चोट पड़ती है। सैकड़ों डके एक साथ बज उठते हैं। फौजी कमर फस हथियार सम्हालने लगते हैं। सवार अपने घोड़ोपर झूद पड़ते हैं। पर जब उनकी कतार आगे बढ़ती है तब औरगजेब उनके आगे होता है।]

वाचक—घमानान लड़ाई छिड़ जाती है। मलिक दुश्मनको दम देने-लेने वाला लड़ाका नहीं। तीन दिन तीन रात लड़ाई होती रही थी,

वह सहमा आ धमकता है। घटे भर बाद ही मुगलोकी मेना हिम्मत खो बैठती है। पर औरगजेब तनिक भी चिन्तित नहीं है। मगरिवकी नमाजको डूबता सूरज याद दिलाता है। घोड़ेमे कूद वह जानमाज बिछा लेता है और अब इतमीनानमे नमाज अदा कर रहा है। दुश्मनके सरदार उमे घेर मलिकको गवरा देते हैं। मलिक उसके शान्त चेहरेको देख दग रह जाता है।

मलिक—इस दीवानेमे लडना नादानी है। कोई उमे हाथ न लगाये। चलो, इसे कल जीत लेगे। नमाज अदा कर लेने दो।
[औरगजेबकी पेशानीपर एक बल नहीं पड़ता। सचका प्रस्थान]

२

[औरगजेब कलम चलाये जा रहा है। मुराद तेजीमे प्रवेश करता है]

औरग०—बस चार मतरे और, भाई। फिर काम गत्म है। [औरगजेब कुरानकी पोथी एक ओर रख देता है।]

मुराद—[चिढ़कर शरीरतामे] मामूगढ धर्मान नहीं है, मिशर। बूंदीका छत्रमाल कम्द करके आया है। राजपूती लङ्कार मैदानमे उमड़ती चली आ रही है। उसके मिरपर दाग है।

औरग०—[हँसकर] मिरपर दाग है। दाग क्या अर्थात् न था, मुराद ? और राजपूती लङ्कार क्या मिशरके मिनाही तानी हुई नहीं है ? न मही जोधपुरकी, बूंदीकी हो गयी। और मुराद, जैसे जमवन्तको देख लिया था, छत्रमालही भी दग था।

मुराद—भाईजान, बहुत बिगुल नहीं है। जानपर आ प्रोपी। मुराद-

शरीफको किनारे कीजिए, आवेहयातके दो घूंट ले लीजिए जिसे पीकर आपका हाथी वो सामने झूम रहा है।

औरग०—प्यारे मुराद, आवेहयातके घूंट तुम्हे मुबारक। आया मैं भी। सतरे लिख गई हैं, और लो इनपर सुनहरी धूल भी पड़ गई। हाशिया कल बनेगा। औरगजेब इसे बेचकर महीने भरके लिए गिरस्तीसे बेफिक्र हो जायगा। चलो, यह आया। [मुराद अब तक अपने हाथीपर बैठ चुका है।]

×

×

×

[राजपूतोंका भयानक हमला। गुजरात, मालवा और दक्कनकी फौजोंमें भयानक भगदड़। मुराद, कासिम, दौलत सबके हाथी अपनी ही सेना रौंद चलते हैं। औरगजेब अकेला। दहशत कि वह छुद तो जान रहते मैदान न छोड़ेगा पर अगर हाथी भागा तो ? महावतसे कहता है—]

औरग०—मोहसिन, हाथी कहीं भाग न जाय। वह देख राजपूत रिसालों की नई बाढ़। हाथीके पैरोंमें काँटेदार जजीर डाल दे। और जजीर जमीनमें दफना दे। तब तक मैं राजपूतोंको तीरोपर लेता हूँ। मैं नहीं हिलनेका। आज यह मैदान करबला होगा।

वाचक—लोहेसे लोहा बज चलता है। भागती दक्कनी सेना, भागते मुराद, कासिम और दौलत लौट पड़ते हैं। राजपूत रिसालोंका जोर थम जाता है, छत्रसालका घोड़ा जमीनमें लोट रहा है, दाराका बेलगाम घोड़ा आगरेकी ओर भागा जा रहा है।

३

[औरगजोब ताजपोशीसे लौटकर बैठा ही है]

मसूर—जहाँपनाह, आज गुलाम वह माँगता है जिसे माँगनेका उसे हक
हामिल है ।

औरग०—माँग, मसूर, क्या लेगा ? पर क्या तब्तपर बैठ जानेमे ही मसूर
कुछ दे सकूँगा ? खैर, माँग, पर तू जानता है, कगाल ह, कलौ
बात खाली न जाय । नगा न कर देना मुझे ।

मसूर—दीनो दुनियाका मालिक कगाल तो अपनी मर्जीमे है, पर उमकी
मल्लनतकी कोई चीज नही माँगूँगा । फात उमका माँगूँगा, उमका
अपना—बस इतना कि आज तब्तनमी होनेकी गुशीमे दम्तरगानकी
लज्जते मजूर कर ली जायँ ।

औरग०—सूबे, मसूर, तुझमे मैं माँका प्यार पाता हूँ । पर काश कि तू
समझ पाता कि ये लज्जते मुझे अपनी ओर नही खींच पाती ।
मुझे उन कीमती चीजोको गानेका हक नही है । मैं महज उम
खानेका हकदार हूँ जिसे मेरे हाथ कमाकर गरीब गफते है । पर
पुलाव और फिरनी, मुश्क और केसर, हारिल और मुर्ग मेरे लिए
नही । वैसे भी तू जानता है, मुझे गोश्तम कुछ गाय उष्क नही ।

[चुपचाप टहलने लगता है । रोशनाराका मुसकराते हुए धीरे-
धीरे प्रवेश]

रोशनारा—मैं दखल दे सकती हूँ, भाईजान ?

औरग०—बोल, रोशन । क्या कहती है, तू ?

रोशनारा—कुछ पृथना चाहती हूँ, मेरे फकीर भाई ।

औरग०—पृथ, मेरी मुँहजार बहन ! जाट्टि है तेरी आमागि कि तू मुँह
गर्त है ।

रोशनारा—मैं पूछती हूँ, फिर यह तख्त क्यों ? यह शाही पोशाक क्यों ?

यह जवाहरताजडा ताज क्यों ? मोतीभरे जूते क्यों ?

औरग०—इसलिए कि वे औरगजेबके नहीं आलमगीरके हैं, खुदाके खिदमतगार बादशाहके, जो मेरे बाद वारिसके हकमे उतर जायेंगे—
यह तख्त, यह ताज और कलगी, यह लेवास, ये जूते । और तुम देखेगी, मैं अपने लिए महल नहीं बनाऊँगा, मकबरा नहीं बनाऊँगा । जिन्दगीका दरवेश कयामत तक दरवेश रहेगा, इसा अल्लाह !

रोशनारा—तुम जिन्दा ग़हीद हो, मेरे भाई । बहिश्तके फरिश्ते तुमसे रश्क करेंगे । [रोशनारा चुप हो रहती है । मसूर चुपचाप आँसू डालता रहता है । औरगजेब टहलता रहता है ।]

[पटाक्षेप]

ताहि वोइ तू फूल !

वाचक—जो तोको काँटा बुवे, ताहि दोइ तू फूल । भारतीय सस्कृतिका यह मूल मन्त्र रहा है । सदा सदा ही उसने घृणाका उत्तर स्नेहसे दिया है, क्रोधका दयासे, युद्धका शान्तिसे । हमारा समूचा इतिहास इसका साक्षी है ।

वाचिका—वामे दुनियाके सफेद पामीरो और पीले चीनके बीच सरहिन्द है, भारतके प्राचीन उपनिवेशोका देश । उत्तर उसके चीनियोका देवगिरि तियेन शान है, दक्खिन वयुनलुनकी तिब्बती पर्वतमाला । पूरव वयुनलुनकी ही भुजा नान शान चीनकी अनेक महानदियोका उद्गम है । पच्छिममे पामीरोकी शृङ्खला एक ओर हिन्दूकुशको छूती है दूसरी ओर तियेन शानको ।

वाचक—नदियोकी अनेक धाराएँ इन पर्वतोसे निकलकर पहले तेज फिर फैलकर धीमी बहती तकलामकानकी रेतमे खो जाती है । तियेन शानकी उत्तरी ढालसे उतर सिर दरिया अरल सागरकी ओर बह जाती है, काशगर दक्खिनी उतारसे उत्तर दक्खिनकी ओर, तारीम तकलामकानका परकोटा बनाती लावनौरकी ओर पूरव चली जाती है, और आमू पामीरो और हिन्दूकुशके बीच केसरकी बयारियाँ उगाती, दाखोसे धरती ढकती, मैदानमे उतर जाती है । इन्ही नदियोके बीच कभी भारतीय सभ्यता फैली, वीद्ध वस्तियाँ बसी । यही हिन्दके सन्तोंने लहू और लूटके नामपर दौड पडनेवाली खूँखार जातियोकी तलवारकी धारको चूमा और तलवारे बल्लरी बन गयी ।

वाचिका—उसी दिशामे तारीमके तटपर कुचीका राज था । कुची ही राजकी राजधानी थी । कश्मीरी पण्डित कुमारायण एक दिन उसी वृचीमे जा पहुँचा । कश्मीरके उत्तरमे हिमालयका मस्तक करा-

कोरम है। मिन्यकी धारा उममे होकर बहती है, गिलगित और यामीनकी धाराएँ पामीरोकी ओर निकल जाती हैं, कुमारायण गिलगित और यामीनकी कछारोसे होता तारकुर्गनि पहुँचा। आगे-की राह काशगरकी थी, कुचीकी, तुर्कानि, तुन हुआङ्गकी, चीनकी। कुमारायण कुचीसे आगे न बढ़ सका।

वाचक—कुमारायण कश्मीरके राजाके मन्त्रिफुलमे जन्मा था। राजा मन्त्रित्व उसका पैतृक था। पर एक दिन उसे लात मार पामीरोकी छत लाँघता वह तारीमकी घाटीमे जा पहुँचा, कुचीके नगरमे। और अपने आकर्षक आचार, शालीन पौरुष, विदग्ध पाण्डित्यमे उसने राजधानीके जन-जनको मोह लिया। राजाने उसे अपना गुरु बनाया।

वाचिका—कुमारायणके जिस आकर्षणने जीवाको मोहा वह था उसका काम्य कलेवर, उसकी मदिर भारती, मिन्य गौरभ। जीता राज-कन्या थी, अभिनव वगन्तकी उठती हिलोर-गी अन्हड, बैंगे ही बबूलके परागपीत कुसुम-गी कोमल, स्निग्ध गुणद। बही कुमारायण, वही जीवा एक दिन वगन्त वैभवमे लदी गुहाके गामने झागिया-के बीच—

१।—हिमपातमे आकाश कैसा उदाग हो जाता है, आचार्य, दिवाण कितनी सूनी हो जाती है। पर तब वगन्तका यह वैभव क्यों दिखा रहता है भला, जो बादको मटगा बग्ग पड़ता है ?

कुमारायण—जीव दुबेल है, जीवे, पर उगती गाँव अमर है। पर अगर मैं समूचा वगन्त समाया रहता है और शिथिल हो जाता हूँ तो पान भी उसे नहीं मार पाता। अनुत्पन्न पत्रकी पत्रग पाती है वह अकुर अनन्त-अनन्त प्राणोंने पत्र उठाया है। बादरही मूँट परम्परा घरकी निहाल कर देती है।

जीवा—एक अकुर, एक साँस, एक प्राणकी जब यह शक्ति है, गुरुवर, तब जहाँ ग्यारहो प्राण एक-मन काँप रहे हो वहाँ वसन्त क्यों नहीं वगरता ? क्या प्राणवान्को प्राणोका मोह नहीं ?

कुमार०—वसन्त वगरेगा, जीवे । प्राणोका मोह भी प्राणवान्को है । पर साधनाका वरदान अभी ठिठका हुआ है । शीघ्र वह वरदान मिलेगा और तपसे डही काया फिर नवता धारण करेगी ।

जीवा—कब, आचार्य, कब ? तपसे डहतो कायापर उनचासो पवन झूम रहे हैं, अब तो सतीका दाहकुण्ड अपनाना ही शेष है ।

कुमार०—नहीं, जीवे, ऐसा नहीं करना । सतीका आचरण यद्यपि तुम्हें सुलभ है, किन्तु शिवका पौरुष मुझमें कहाँ ! पर जानो, देवि, कि तप फल कर रहेगा, साधना सिद्ध होगी, स्नेहके कञ्चनमें रतनकी जोति जगेगी ।

जीवा—गुरुवर, वारहो आदित्योंके तापसे डही घराको उत्तरके मरुको लाँघकर वहता वायुवाहित शिशिरका हिम शीतल करता है और शिशिर की मारी कमलिनीको मधुका सौरभ अनुरागसे भेंट कर फिर जिला लेता है, पर मेरे मानसका मुकुल सदा सम्पुट ही रह जाता है, क्या यह यातना नहीं है ?

कुमार०—है, देवि । निश्चय है यह यातना, पर यातना यह परिष्कारकी है, मानसके परिष्कारकी । इसके आतपसे, शिशिरके हिमसे, जिस वसन्तका वैभव सजेगा उसका फिर अन्त न होगा । वस, तनिक और, फिर मधुकी मर्यादा बाँधते न बाँधेगी ।

जीवा—माना, देव, माना । पर कायाके डहनेकी भी एक मात्रा होती है । निदाघकी जलती दुपहरी लाँघ हिमके निठुर पालेपर हिया सेंकती है, मनका भरम टूटने नहीं देती, पर जब एक दिन वसन्त चराचर-पर नहना छिनरा जाता है, चारो ओर अकुर फूटने लगते हैं, डहकती केसरसे क्षरती पराग अलकजालपर छा जाती है, तब,

मेरे देवता, मैं अपने रोम-कूँपोको महुनित नहीं रग पाती । तब होता है, जैसे कोई होता और [उच्छ्वाम] नन्दकी ननाई अपनी मुन्दरीके चिबुकमे कर्णपर्यन्त रतिम रेगामे नाच बाली लिरा देता । एक बार, वन एक बार, फिर चाहे मुन्दरीका तट नन्द मदाके लिए विरत ही क्यों न हो जाता । वन, फिर तो बालीकी टहनी-टहनी, पल्लव-पल्लव, मुकुल-मुकुल मगु बा जाता । निहाल हो जाती । [उच्छ्वाम]

कुमार०—बोलो-बोलो, जीते, धोलती जाओ अमृत । न रोको डम वेगानी कादम्बिनीको, वहने दो डमे ।

जीवा—वहने न दूँ तो मन्देह न हो जाय ?

कुमार०—मन्देह कैसा, मदिरे ?

जीवा—भूक गये उन दिनकी अपनी ही पवित्राँ ? तुम्हारा न । कि मेरी तुम्हारा न उन्हे ?

कुमार०—तुम्हीं तुम्हारा दो, जीवे । तुम्हारे स्वरके कम्पनमे जनना गा । पत साथ फूट पड़ती है । तुम्हारा दा, मन्दह नि मार कर दा उगमे । हम कर दोरो कि तुम्हारे व्यगन में जति पाऊ ।

जीवा—[गाना है]

कैसे मातूँ, तुम यह पीडा जान रही पढ़वान रही हो,
जब अपने नयनोंके शर बाँके कर नित मन्थान रही हो ?
देखो, नागरि, इस अन्तरको रजनी के नयनों मे देणो,
जिनके तारे रश्मि न मुंदते आशा के स्वर भर जाने हैं,
एक तुम्हारे मदिरे नयना नयनों मे पा गए जान हैं ।
कैसे जानूँ, भोले मन की सपनों मे नरमा न रही हो ?
कैसे मातूँ० ?

वाचित्री—और इस मधु मन्थाने, प्रतीक की विषय है मन्थाने का नाम
मिथुन कालेवरने उचरती नाते मन्थाने, मन्थाने का अर्थ मन्थाने ।

साँझके आँचलमे लहकते केसर कुसुम झूम पड़े । पवनके फँले पख
उनसे झरती पराग दिशाओको ले उड़े, दिशाएँ गमक उठी ।

वाचक—अगले दिन जब तारीमके जलमे स्नानकर कुचीनरेश सूर्यको टटके
कुसुमोका अर्घ्य चढ़ा रथकी ओर बढ़ा तभी उसकी उठती दृष्टिमे
पुरुषकी छाया डोली । राजगुरु कुमारायण कर-वद्ध खड़ा था ।
राजाने प्रसन्न-वदन गुरुके चरण छुए, हाथ जोड़ बोला—

राजा—करवद्ध क्यों गुरुवर ? अकिञ्चन शिष्यकी श्रद्धा क्या व्यगसे
तिरस्कृत होगी ?

कुमार०—नहीं, राजन्, व्यग नहीं सत्य करवद्ध हूँ आज । याचक हूँ
आज तुम्हारा, आदेश हो तो माँगूँ ।

राजा—देव, वसिष्ठवत् राजकुलपर शासन करनेवाले आचार्यको अभिभूत
शिष्यके आदेशकी कैसी आवश्यकता । आज्ञा करे गुरुवर ।—
तारीमका केसरिया अचल दूँ या तुफान पर्यन्त यह उर्वर धरा ?
या दण्ड-छत्र सहित यह राजमुकुट ही दे डालूँ ? बोले ।

कुमार०—नहीं, राजन् । नहीं चाहिए मुझे तुम्हारा यह तारीमका अन-
मोल केसरिया अचल, न लूँगा मैं तुफान पर्यन्त यह उर्वर धरा,
और न ही तुम्हारा यह राजलाहित मुकुट ।

राजा—फिर क्या दूँ, आचार्य ? तारीमसे उठते अरुणको साक्षी दे क्या
अपने पुण्योका गुरु-चरणोमे सकल्प करूँ ?

कुमार०—नहीं, राजेन्द्र, पुण्योका लाभ तुम्हें हो । मुझे तो इस काल
माँगनी है वसिष्ठकी इष्ट-माधिका अरुन्धती, सतियोकी मणि
अनुमूया । दे दो उसे ।

राजा—कौन है वह अरुन्धती, गुरुवर, कौन वह अनुमूया ?

कुमार०—तीन निर्मम निदाघ जिमकी स्मृतिमे कुचीमे काट चुका हूँ, तीन
गिरिजके हिमपात जिमकी आगामे झेले हैं, प्रातः सन्ध्याके देव-
चिन्तनमे जिमकी द्युति नित्य झलकती रही है, उमी जीवाको

पत्नी रूपमें माँगता हूँ । दे दो, राजन्, मुझे अपनी वह असूय निधि । अखण्ड अनुरागमें उसका अन्तर आर्द्र है, नि सीम स्नेहमें मेरा मानस अभिषिक्त है । दे दो कि हम दोनों पावन अन्तरमें रीं कर रथचक्रोंकी भाँति एक दूसरेको भेटें, कि बत्तरी तल्लो घेर ले ।

राजा—अनुगृहीत हुआ, गुरुवर । पर एक शर्त है । [कुछ रुककर] भग्न जीवाका तारुण्य प्रौढ पौरुषके प्रतिकूल न होगा ?

कुमार०—नहीं, राजन् । काया कालपरिमित है, जीव कालातीत । जीव यौवन और जराकी परिवर्तिमें नहीं वैवता । जीवाका तारुण्य प्रौढ पौरुषका व्यग्न न बनेगा, निश्चिन्त हो ।

राजा—निश्चिन्त हुआ, आचार्य । जीवा आपकी महामाहिनी हो, आप दोनों रथचक्रोंकी भाँति दौडकर एक दूसरेको भेटें, बत्तरी तल्लो घेर ले ।

कुमार०—निहाल हुआ ।

वाचक—और उसी दिन कुमारगण और जीवा पति-पत्नी बने । दिवा, सप्ताह बीते, मास और वर्ष । तीन बार । तीसरी बार जब दिशाङ्ग ऋतुमती हुई, तारीमके अन्तर्लमे तीसरी बार जब केसरकी तयारियाँ कुमुमित हुई, तब जीवाकी कोण भरी । नयनाभिराम नवजात दिशाओंको प्रसन्न करना अनिराम रोया । माता-पिताके सम्पुत । स्नेहके परिचायक उग शिशुका नाम पड़ा कुमारजीव ।

वाचिका—पाँच वर्ष बाद कुमारगण निशु होकर चला गया । जीवा निशुणी बन कुचीके मयाराममें रहने लगी । फिर एक दिन दोनों, जीवा और नौ वर्षका उमरा कुमारजीव, तयारी जा पहुँच, अध्ययनके लिए । वही पन्द्रह वर्ष बाद, महाविद्यालय विद्या आंगनमें, जहाँ हजारों निशु-निशुणियाँ हैं, उपायक उपार्जितकारी भीड़ निशु कुमारजीवके प्रयत्न गुननेके लिए उपस्थित थी —

कुमार०—श्रावको, मेरे ज्ञानवान श्रावको, आजका दिन अनमोल है—
तयागतके जन्मका, महाभिनिष्क्रमणका, उनकी सम्यक् सम्बोधीका,
निर्वाणका ! आजकी इस पुण्य तिथिपर आपसे मैं कुछ माँगूँगा ।

['माँगें, भिक्षु, माँगें !' की अनेक श्रावाजें ।]

कुमार०—मेरे श्रद्धावान श्रावको, अब तक तुम्हें मैं देता रहा हूँ, आज
मुझे तुम दो जो कुछ मैंने आचार्यों, स्यविरोसे पाया, जो कुछ मैंने
भगवान्‌के जीवनसे, उपदेशसे पाया, जो कुछ स्वयं गुना, वह
सारा ही तुम्हें मैंने मुट्ठी खोलकर दिया है । माता जैसे गर्भके
शिशुको अपनी समस्त शिराओं द्वारा शरीरमें पहुँचनेवाले आहारसे,
पेयसे, अनायास पुष्ट करती है, चाहकर भी अपने आहार और
पेयके रससे उसे वंचित नहीं रख सकती, उसी प्रकार मैंने भी
तुम्हारे मानसको अपने सचित और गुने ज्ञानसे भरा है, वर्षों । पर
आज मैं तुम्हारे बीच याचक बनकर माँगने आया हूँ, निराश न
करना मुझे । अजलि खोलकर, ग्यारहो प्राण इस अजलिमें समेटे,
रोम-रोमके कूप खोले, आज माँगता हूँ, दे दो, मेरे श्रावक-
श्राविकाओ !

['माँगें, प्रभु, माँगें ! भिक्षा, माँगें !' की श्रावाज]

कुमार०—आज तुम अपने सारे पाप, सारी व्यथाएँ, सारे कलक, सारे
मोहबन्ध, रोग-व्याधियाँ, शोक-चिन्ताएँ मुझे दे दो । देखो, तुमने
वचन दिया है, निराश न करना । तुम्हारा याचक आज अपने
सघाटीका आँचल फैलाये माँग रहा है । अपना मोह-आसक्ति,
तृष्णा-वासना, अपने राग-द्वेष, क्रोध-ग्लानि आज मुझे दे दो ।
मेरे अनमोल बन्धुओं, वृद्धोंको अटूट पक्तियोंने, साधुओंकी जुग-
जुगकी वाणीने केवल तुम्हें दिया है, कुछ भी तुमसे लिया नहीं,
पर आज उन सबकी वाणीको अपने कण्ठमें डाले, भिक्षा-पात्रकी
अनन्त गहराइयोंके द्वार खोले, याचक तुमसे माँग रहा है । भर

दो उसका मुख, उसकी गहराइयाँ, मेरे निर श्रावक-श्रापिताओ, अपने दुःख, अपनी व्याधियों, अपनी समस्त अदम्य कापनाओसे। तुम्हें मैंने गान्ति दी है, स्नेह दिया है, ज्ञानका पायेर दिया है। आज यह याचक तुमसे माँगता है, उसे तुम अपनी ममती अज्ञाति मारी घृणा, समस्त धुना दे दो। दे डालो आज अपनी कृपा, अपनी निराशा, अपनी पराजय।

वाचिका—इतने कम्पित स्वरसे याचना कभी सुगर न हुई थी। मा मदा भिक्षुओने दिया था, कभी माँगा न था। श्रावक-श्रापिताओका अन्तर गद्-गद हो उठा। अनर्जमे उनके नेत्र फैल गये, आनन्द और स्नेहके आँसुओसे भरे वे भिक्षुओ चक्रित अपला निहारते रहे। भिक्षु और स्थविर चक्रित ये उग्र अमातारण परचनसे। चीतर फैलाये भिक्षु गडा रहा, रोना हाव मपा गीते छोर फैलाये थे, हाँठ किचित् गुल गये थे, ज्ञान मुग्धमग्नपर मुसकानकी आभा लिटक रही थी। धीरे-धीरे जनताकी आवाज उठी 'धन्य ! धन्य !' और दिशात्रामे छा गया।

वाचक—भिक्षुके प्रवचनका वह अन्तिम दिन था। वदुरी गौडक चरणमे स्थविरसे कुमारजीवने प्रयागकी अनुमति पायी। रथीर बोले—

स्थविर—साग सारन तुम्हारे प्रवचन सुननेको लाया गया है, कुमारजीव। देशके कोने-कोनेमें श्रद्धावान उपायक चर आ रहे हैं, निराश न हों, रह जाओ।

कुमार०—भन्ते ! भिक्षुको निराश न कर, अनुमति दे दो। जान मा। कुचीकी ओर। तयागाता जान पढ़ना, जानि लो।

स्थविर—फिर उग्र नो न जाओ, निरा। वदुरी नाम से जाना, पामीर की श्रद्धालुने तारीमनी आये। तुम तारीमनी मया लो। जान आग्रह है। विरगद उग्र गौडक नो मया, रथीर।

मानते । जलते नगर, उजडते गाँव उनकी चली राहकी कथा कहते हैं । न जाओ, हूणोकी ओर, भिक्षु ।

कुमार०—पर मुझे तो उन्हीमे जाना है, भन्ते । शाक्यसिंहकी गिराका, उन्हीके आदिनिवास कानसूमे, चीनके उस उत्तर-पश्चिमी प्रान्तमे उद्घोष करूँगा । इस देशमे, यहाँकी परम्परामे शान्ति और स्नेहकी कमी नही । शान्ति और स्नेहकी आवश्यकता उसी भूमिको है जहाँ हूणोके मृत्यु-ताण्डवसे धरा धरित है, काँप रही है । हूणोकी दिगाएँ मुझे पुकार रही हैं । अनुमति दे, भन्ते ।

स्थविर—कानसूमे, हूणोकी मूल भूमिपर ?

कुमार०—हाँ, भन्ते, कानसूमे, हूणोकी मूल भूमिपर ही तथागतके सन्देश का गङ्ग फूँकूँगा । देशका नस्कार, घृणाका बदला प्रेमसे, क्रोधका दयामे देता रहा है । महामना अशोकके पितामहके समय यवन अलिकसुन्दरने सप्तसिन्धु जीता । असि और अग्नि लेकर आया था बर्बर । दो पीढी बाद अशोकने अलिकसुन्दरके देश मकदूनिया मे, यवन राज्योमे, औपधियाँ बँटवायी थी । असि और अग्निके बदले उन्हीने जीनेके साधन बाँटे । कैसे भूलूँ, भन्ते, उस पावन परम्पराको ? जाने दे मुझे भिक्षुतम, अनुमति दे ।

स्थविर—जाओ, भिक्षु, निर्वन्ध हो । दिशाओमे समा जाओ । तुम्हारी गिरा गगनके दूरतम छोरोको छू ले । तुम्हारे पराक्रमसे सद्धर्म व्यापक हो । जाओ, बहुजनहिताय । बहुजनसुखाय ।

कुमार०—बहुजनहिताय । बहुजनसुखाय ।

[पगचापकी ध्वनि]

वाचक—और भिक्षु चला गया, कश्मीरकी ऊँचाइयोसे उतर काबुलकी घाटीमे नगरहार होता वामियानकी ओर, फिर हिन्दुकुग लाँघ आम् पार बहलीकोमे । वही अब हूण बसते थे । और चढ़ गया

निर्वृन्द भिक्षु पामीरोकी चोटीपर, वहाँ उनकी बन्धियोंमें, जहाँका परकोटा बर्फकी मेखला बनाती थी, जहाँ जाने-आनेके मार्ग गाढ़ ग्रीष्ममें खुलते थे ।

वाचिका—और वही हिमकी आँधी झेलता, त्रिनीवर थारे, शीते कम्पन मात्रमें भयानक शीत जीतता कुमारजीव जा पहुँचा । हृणोके पडावमें—चँवरी गायोकी सारके तन्वुओमें रत्नके प्यासे अरुण हृणोका निवाम था—मिहको फाड़ डालनेवाले कुत्तोंके पीन, हुङ्कारसे पर्वतकी छाती दरका देनेवाले हृणोके बीच । काया कोमल थी उस भिक्षुकी, आत्मा लोहमत् दृढ़, मङ्गल प्रयत्नमें निर्मम था । सन्तरियोने घेर लिया । ले गये सरदारके गामने, भालोके बीच ।

सरदार—[बिजलीकी कड़क-सी आवाजमें] कौन हो तुम ?

कुमार० [हँसकर] पहचानो ।

सरदार—[कुछ रुककर स्निग्ध स्वरमें] मे, हाँ, पहचाना, यतु हा ।

कुमार०—बन्धु हैं, तनिक आस्थामें पहचानो, हृणपति ।

सरदार—अर, तुम तो बही हो ।

कुमार०—हाँ, बही हैं, पर हैं तुम्हारा बन्धु ही ।

सरदार—खा तुमने मेरे सैनिकोंपर जादूकर मेरे विद्रोही जनता पर अनमकन नहीं किया था ?

कुमार०—किया था, पर जादू करते नहीं, औचित्य पादकर । जोर तब तुम्हारा यतु नहीं, पुत्र था, आत्मज ।

सरदार—मैं उसे पुत्र नहीं मानता, विद्रोही है वह, मर गय । और देवों, तुम्हारी मृत्यु ही तुम्हें भी मरौं सो । क्या है ।

कुमार०—[हँसकर] विद्रोह तो मर तुम्हारा अर तुम्हारा मर गया है, जैसे तुम्हारे पुत्रने तुममें किया था । रही मरने का, तो मर

अकिञ्चन भिक्षुको मारकर मुझे बडभागो ही बनाओगे । मरण तो शरीर-बन्धसे मुक्तिका नाम है ।

सरदार—[कडककर] मैं तुम्हारी ये बातें नहीं समझता । न तब समझा न अब समझ पा रहा हूँ । मैं एक बात समझता हूँ, कि तुम मेरे विद्रोही शत्रुको बन्धन-मुक्त करके मेरे शत्रु हो गये हो, और मुझसे शत्रुताका परिणाम तुम जानते हो ।

कुमार०—[धीमे स्वरमे] हूणपति, जिसके उल्लासकी कथा उजड़े गाँव और धधकते नगर कहते हैं उसके कोपके परिणामका अनुमान करना कठिन नहीं, पर मैं फिर कहता हूँ—तुम्हारा बन्धु हूँ, तुम्हें भयसे मुक्त करने आया हूँ ।

सरदार—[कडककर] बन्द कर बकवास । सिंहकी माँदमे सिंहको छेड़ रहा है । मुझे कायर कहता है । मुझे किसका भय ? जिसके भयसे दिशाएँ काँपती हैं, शत्रु बिना लड़े पहाडकी चोटीसे कूदकर डरसे प्राण दे देते हैं उसे डरपोक कहता है । जिसकी सेनाओकी धमकसे पामीरोकी छाती दरक जाती है, वह डरेगा । जिसका नाम सुनते ही सार्यवाह विपन्न हो जाते हैं, कश्मीर और काशगर, वामियान और वास्त्री, खुतन और कुची, तियेनशान और तुर्फान हिल जाते हैं, उसे भय है । तू पागल है, निरा पागल ।

कुमार०—कोप न करो, हूणपति, तथ्यको समझो । तुम्हारी सारी क्रियाओका कारण त्रास है, अकारण भय । कश्मीर और काशगरको तुम डरसे लूटते हो, वामियान और वास्त्रीको समय-समयपर तुम उसी भयके कारण रौंद आते हो, खुतन और कुचीपर तुम त्रासके मारे ही घेरे डाला करते हो, तियेनशान और तुर्फानकी गुहाएँ तुम्हारे मारक शत्रु न उगल दें इस डरसे बार-बार उनके फेरे लगाते रहते हो । बोलो, क्या यह सच नहीं ? मनको

टटोलकर बोलो, तब भी तुम्हारी मनातक जति नही तुम्हारे
जपन्य कूरताओका जनक नही ?

सरदार—[कुछ निस्तेज होकर सैनिकोमे] ले जाओ, वर क रों
इस पागलको, कीलोही कागमे ।

[सैनिकोके जूतोकी आवाज, चट्टान टूटनेकी आवाज]

कुमार०—[जाते जाते] मुझे निश्चय बन्द कर दो, वन्यामे डाक रों
पर भला तुम कब अपने वन्यामे मुक्त होगे ?

[प्रस्थान]

वाचक—हणपतिने कुमारजीको कागमे भेज तो दिया पर उसे लगा कि
उमने अपनी ही छातीपर जैसे शिला बर रही है । पहली बार जैसे
हिमीने उमकी कूरताओका रहस्य गोप्यता गायन रूप दिया है ।
उमके नयनोंकी नींद गर गयी, भूल सा चली, विजयाका अन्धकार
नरम पड गया । वह अपनी की हुई एक एक श्वासा, एक एक
अन्याचारको, उगाड़े गावाको, जलाये नगराको जान ली ता फिर
बेटोको, मोचने लगा । उसे लगा कम गन्धर्व उतार साह सायासा
मात्र कारण बाग रहा है—हाथ जो है उस सा दाता बाग ।
और उमके सारे हुए शत्रुओके अन्धकार, जपन हाथ ता उम
अपने ही बेटोके कलाउ उमकी जानि करने दम । पार्श्वभूमि दम
अपने बुर समासी नयानक गन्धणा उी संभल दम । जहा ता
बह भयम विन्दा उठता । उमन मरता । अन्धकार निता ता ता
करनेकी आज्ञा दी । निन्दा आता । कीटा । कुनम रहता । गन्
तदा प्रसाह जागी था, ताग शरीर रर दमन ता रग था । पर
मुँहपर उदासीका नाम न था, मरता मरता था ।

सरदार—[बनावटी हँसी हँसकर] बाग १, ता २ ।

कुमार०—कीटागी मरता मरता २, मुँह र नही है । व ता ३, व ता ४
तमनदम दम । मरता मरता ५, आता है, व ता ६, व ता ७ ।

उमड आता है, उनके दु खोकी यादसे काया डह जाती है । पर भला तुम तो कहो, हूणपति, क्या तुम्हारी राते शान्तिसे बीतती है ? [रुककर] पर तुम्हारे नेत्रोंमें तो उन्निद्र वसा है । मैं तुम्हारे दु खसे दुखी हूँ, हूणपति, आकुल मनको स्थिर करो ।

सरदार—[वनावटी कडक भरी आवाज] मेरा मन स्थिर है, भिक्षु । राते चैनसे सोकर बिताई है मैंने । मैं निडर हूँ, कालसे भी नहीं डरता ।

कुमार०—[बात काटकर हँसते हुए] तुम अपनी छायासे डरते हो, हूणपति, अपने ही स्वरसे, अपने किये कृत्योंसे । लोभने तुम्हें क्रोध दिया, क्रोधने कृत्य, कृत्योंने भय और अब तुम्हारा सारा आचरण मात्र त्रासके अधीन है । वही तुम्हारी सेनाओंका संगठन करता है, तुम्हारे अभियानोंका निश्चय करता है, युद्धोंका संचालन । भयकी तुमने आँधों चलायी है, उसके प्रधान शिकार स्वयं तुम हो चले हो ।

सरदार—[सहसा आसनसे गिर पड़ता है] ऐ, यह मुझे क्या हुआ ?

[सैनिकोंका डरकर इधर-उधर हट जाना]

कुमार०—[सरदारको आसनपर बैठाता हुआ] उठो, सज्ञा लाभ करो, हूणपति । समारमें भयका पक्ष गौण है । समारका प्रजनन-पालन स्नेहमें होता है । स्नेह उसका प्रधान पक्ष है, जानो । जो दूसरोंको अपने त्रामने शङ्कित करता है वह स्वयं अपनी छायासे डरता है । धरापर इतनी धूप फैली है, इतना बन्धुत्व भरा है ससारमें—उनका अपमान न करो, भोगो उन्हें ।

सरदार—[धीमे स्वरमें] भिक्षु ।

कुमार०—बोलो, हूणपति । कहो ।

सरदार—न वही हूणपति मुझे, भिक्षु । मैं तुम्हारी कीलोपर भी चलने-वाली शक्तिने ईर्ष्या करता हूँ । तुम अपनी यह शान्ति, यह

सघ०—भन्ते, अब प्यासके मारे प्राण आकण्ठ आ गये हैं । एक पग नहीं बढ़ा जाता । टट्टुओकी भी शक्ति क्षीण हो चुकी है ।

कुमार०—उनकी चिन्ता न करो, सघमित्र । पशुमे मनुष्यसे प्यास कम होती है । जीवोमे तृणालु सबसे अधिक मानव ही है ।
[हँसता है ।]

सघ०—कैसे सयम रख पा रहे हैं, भन्ते ? आप तो मुझसे कही दुर्बल हैं । आपके होठ तो और भी अधिक सूख गये हैं ।

कुमार०—[हँसता हुआ] सघमित्र, चोटसे चट्टान टूट जाती है, पहाड़-की छाती दरक जाती है, पर मानव हृदय अपने ऊपर रेप नहीं लगने देता । वह जितना ही क्रूर हो सकता है, कठोर, उतना ही स्नेहिल, द्रव भी । हिंसा पाहनसे भी कठोर है, वज्रसे भी निर्मम, और सहनेकी शक्ति जितनी उसमे है उतनी लोहेमे भी नहीं । काया गल जाती है पर मर्मका बना हिंसा मुरझाता तक नहीं । मनकी शक्ति बड़ी है भिक्षु, अपार ।

सघ०—क्या करूँ, भन्ते ! अब तो जैसे चरण कण्ठमे समाकर अवरुद्ध हो गये हैं । प्यास अब और चलने न देगी । अब मुझे, भन्ते, इस सिकतामे समाधि लेने दे । आप मेरे चीवर ले ले, सम्भवत आतपसे कुछ रक्षा हो ।

कुमार०—[हँसकर] तुम्हारे चीवर आतपसे मेरी रक्षा कहाँ तक कर सकेंगे, सघमित्र ? अच्छा देखो, एक काम करो । अश्वकी शिरा काटकर थोड़ा रक्त पी लो, पिपासा कुछ शान्त हो जायेगी ।

सघ०—ऐ, यह क्या भन्ते ? हिंसा ?

कुमार०—यह हिंसा नहीं है, भिक्षु, रक्षा-कवच है, धारण करो इसे । जीवनसे बढ़कर कुछ भी पवित्र नहीं । फिर इष्ट कानसू पहुँचना है, जीवित रहकर । यहाँ अधिकके लिए कोडेका हनन है । इष्ट

जीवा—जाओ, भिक्षु, कानसूका तुम्हारा सकल्प पूरा हो !

कुमार०—चिन्ता न करना, देवि, सद्धर्मके महामार्गपर तुम्हीने मुझे आरुढ़ किया था । आशीर्वचन करो कि चेतूँ, कि उपासक चेतें, कि जग चेतें ।

जीवा—जाओ, कुमारजीव, जाओ । पन्थ नि शूल हो । तथागतके देखे सत्यका प्रसार करो—सत्य जिसका आदि कल्याणकर है, मध्य कल्याणकर है, अन्त कल्याणकर है । बहुजनहिताय, बहुजन-सुखाय, जाओ ।

कुमार०—[जाता हुआ] बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय ।

वाचिका—और भिक्षु चला गया, वन्दियोंके बीच, विजयिनी चीनी सेनाके साथ । जब तक ऊँटोंको घण्टियाँ बजती रही, जब तक टट्टुओंकी धुंधली रेखा क्षितिजसे मिट न गयी, जब तक उनके पदोंसे उठी धूल आकाशमें विलीन न हो गयी, तब तक जीवा खड़ी पूर्वकी ओर भरे नयनों देखती रही ।

[ठक् ठक् ' ठक् पत्थर काटनेकी आवाज़ उसीके बीच वाचिकाका स्वर]

वाचिका—तुन हुआंगकी गुफाएँ खद रही हैं [ठक् ' ठक्की आवाज़ निरन्तर], कान-सूके हूणोंने नत-मस्तक हो कुमारजीवके उपदेश अपनाये हैं । गुफाएँ काटी जा रही हैं । आस्थावान श्रम पर्वत तोड़ता जा रहा है कि उसकी चिकनाई दीवारोंपर बुद्धके चारों दैभव लिय लिये जाय—जन्मके, महाभिनिष्क्रमणके, सम्बोधीके, निर्वाणके, कि विश्वबन्धुत्वकी उदार धारा मरुमें निरन्तर बहती रहे, कि प्रीति घृणाको जीत ले, मानवता वर्वरताको ।

पादक—कुमारजीवकी युग-नाधना पूरी हुई । बारह वर्ष हूणोंके मूल

दिगाएँ रक्तके छोटीसे लाल हो उठी है, नदियोमे रक्ताभ जल उमड़ आया है । लोकपाल विचलित हो गये हैं ।

स्थविर—[कुछ अँची भारी आवाजमे] प्रवचनोकी मात्रा बढा दो, स्नेहकी बाढमे घृणाको डुबा दो । यहाँके हूण सद्धर्ममे दीक्षित हो चुके हैं, उनका मकल्प उनके बन्धुओका इष्ट होगा । कोप न करो, भन्ते ।

प्रज्ञाएचि—कोप नही करता, भन्ते । पर तनिक और सुने—भारतका वैभव नष्टप्राय है । हूणोने सप्तसिन्धुसे अन्तर्वेद तक धरा आक्रान्त कर ली है । तथागतकी मूर्तियाँ मध्यदेशमे, गान्धार और उद्यानमे चूर-चूर हो रही हैं । गुप्त सम्राटोका विशाल साम्राज्य लडखडा-कर गिर पडा है । मरस्वती बरबर हूणोको मोछल झल रही है ।

स्थविर—शान्त हो, भिक्षु । सद्धर्मका पराक्रम कुछ थोडा नही । हूणोकी गति रुक जायेगी, उम्मी मात्रामे जिस मात्रामे हमारा स्नेह उन पर प्राणवान् होगा । रोमनोकी शक्ति-ताण्डवसे गुप्तोका शक्ति-ताण्डव भिन्न नही है । मानवका मूल आचार मानवीयता है, उस मानवीयताका नाम स्नेह और बन्धुत्व है । हिंसाके बाहुल्यका अर्थ है विरोधी तप और साधना, प्रेम और दयाकी कमी । गुप्त साम्राज्य मिट गया, मिट जाय । देशकी मूल प्रेरणा जब तक विश्वबन्धुत्व है, क्रोधका उत्तर जब तक वह शान्ति और क्षमासे देता है, तब तक उसका श्रोत सूख नही सकता, जीवन सहस्र-धाराओमे प्राणवान् होकर बहेगा । निर्द्वन्द्व हो, भिक्षु, गरल पीकर अमृत उगलो । नीलकाण्ठके व्यापक आचारसे मूर्धा टिका दो ।

[निरन्तर छैनियोकी आवाज]

वाचिका—और तून हुआगके दरीगृह नदियो अपने कलेवरपर अजन्ताकी परम्परा उतारते गये । हूणोकी युद्ध-पिपासा मिट गई । चीनने

तबके बाद मद्रा सुन्-विरोधी नीति अपनाई, गांधी और पेंग-
मृतकी । और आज उनके राष्ट्रीय नाट्यशालाकी यात्रापर
अजन्ताकी स्मृतिमें तुन दृष्टाके गगनचारी विद्यालयोंके विद्यार्थी
लिखे हैं । भारतीय सभ्यताकी मूल प्रेरणा चरित्रार्थ है, इसी
बगली सदियोंके मानने किम सकट कालमें यह कर गाया—

| जो तोको काँटा चुवे, ताहि वोड़ तू फूल । |



महाभिनिष्क्रमण

दृश्य ?

[मूल पाली पदोका पाठ]

[दिव्य संगीत—वाचककी पृष्ठ-भूमिमे मन्दस्वर ।]

वाचक—अचिरावती, रोहिणीके मव्य लुम्बिनी फूल उठी । देवदहके मार्गमे माया खड़ी थी, शालभजिकाकी मुद्रामे । शाल फूल उठा । [तनिक रुक कर] नवजातने सात पग लिये, पग-पगपर पुण्डरीक विक्रमा । शक्र और महाब्रह्माने नवजातको उठा लिया, कल्पतरुओके कुसुमजाल पर । प्रसन्न देवोके उत्सव अपनी परिवियोंको लांघ चले । उनसे भावी बुद्धका जन्म सुन महर्षि कालदेवल शुद्धोदनके महलोमे पहुँचे । नवजातको देखकर गद्गद हुए । लक्षण पढ़े—
[संगीतका तिरोभाव] ।

कालदेवल—वत्तीम लक्षण, अस्मी अनुव्यजन ।

शुद्धोदन—[गद्गद स्वरसे] परिणाम महर्षि ?

[नेपथ्यसे] “स चेदगारमध्यावसति राजा भवति । चतुरङ्गश्चक्रवर्ती...

त चेत्पुनरगारादनगारिका प्रव्रजति तथागतो भविष्यति तिघुष्टशब्द सम्यक्सम्बुद्ध ।”

बाल०—सार्वभौम चक्रवर्ती ।

शुद्धोदन—[प्रसन्न स्वरसे] सार्वभौम चक्रवर्ती ?

बाल०—सार्वभौम चक्रवर्ती । सार्वभौम बुद्ध ।

शुद्धोदन—नही समझा, महामुनि ।

बाल०—नवजात यदि मसारमे रुका तो सार्वभौम चक्रवर्ती होगा, प्रव्रजित हो गया तो सार्वभौम बुद्ध ।

वाचक—महर्षि महत्ता रो पड़े । फिर भागिनेय नालकको देख हँसे ।

शुद्धो०—महोपि, दु न्वी क्यों हुए ? क्या सकटके भयसे ?

काल०—आज्वस्त हो, राजन्, सकटकी न राजातक छाया तक न गयी थी।

[फिर नालककी ओर देगकर] भागिनेर, भागता है व मुनेगा, मैं अभाग जो शास्त्रमिहको मुन न मरूंगा।

दृश्य २

वाचक—अकुर बड़ चला, कोपठे फूटती गयी, माया स्वयं मिथार तूनी थी, पर माँ मी पजापनी मोतमीका मधुमय स्नेह का मिदसा। चले। आचार्य विश्वामित्रने ज्ञान दिया, शास्त्राचार्यन हस्त अपन। पर पिताका अन्तर आकुल था। उसमें चोर युगा था, पुरानी भागी पत्रजाका चोर।

वाचिका—उसने तमणके चारों ओर विश्वामित्री परिष्ठा करा। तीन तीन माल गडे हिये—शीतकाल, ग्रीष्म और वर्षा। उनके उपायम पद्ममय लहराने लगे, नील जल रसिम कमल अभिराम का का दम। अरु और विश्व, हेमन्त और वसन्त, निरात और तथा अपने वन प्रेममय उन महदाको, जहाँ परम अरु उपायका निहाल करने लग। मधुमा गरिह ताग्या। तीन माल आरमका धनी श्री स्वयं मिथार तीनों पिता गोपा, अद्वयानिती का या गया। पर इन विश्वामित्र सिख कात्म भी कुमार गोपम मयस्त्र चिन्ता का दृष्ट पद जा, फल दृष्टा उपा। कुमार पर गिणीके नीर चढ़ जा, नृप ता। जामक पर लड़ ना रं, सम्पत्तिमें नेत्र मुद जान। और वन्यो छाया रक्षा का बाँध पर जामन्गी न्याय निरमय माँ रंति।

वाचक—और तनी गरिह सि मेन्दा का का रं स्वयं रं निरं।

जव द्रष्टानती और राजमाता पर।

[स्वयं गमनको द्यति]

सिद्धार्थ—सौम्य ! कौन है यह ? इसके तो केश भी औरोकेसे नहीं ?

सारथी—वृद्ध, कुमार, वृद्ध है यह । सारे जीवधारियोंको इसीकी भाँति एक दिन जराजर्जर होना होता है ।

सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको, जरा जिसमें जीवधारियोंको शिथिल कर देती है । लौटो, मित्र, फेरो रथ ।

सारथी—आयुष्मान् उपवन न चलेगें ?

सिद्धार्थ—रथ फेर लो, मित्र ! लौटो, निवासको लौटो ।

[रथके लौटनेकी ध्वनि]

शुद्धो०—[प्रवेश कर] सारथि, कुमार इतने शीघ्र कैसे लौटे ?

सारथी—देव, उन्होंने वृद्ध देखा है, और उन्होंने जो वृद्ध देखा तो नसारसे विरक्त हो चले ।

शुद्धोदन—मेरा नाश न करो । शीघ्र नृत्यका आयोजन करो । विलासमें रम कर फिर वह ससार तजनेका विचार न करेंगे ।

वाचक—राजाने पहरेपर दुहरे सतरी बिठा दिये । दिन बीत चले । और एक दिन उसी रथपर, उसी राजपथ पर—

[रथकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—मित्र सारथि, कौन है यह जर्जरकाय, स्थूलोदर, पाण्डुगात्र, काँपता, कराहता ?

सारथी—रुग्ण, कुमार, रुग्ण । सभी जीवधारियोंको एक दिन ऐसे ही रोग का शिकार होना होगा ।

सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको, रोग जिसमें इतना प्रबल होकर कायाको व्यर्थ कर देता है । लौटो, मित्र, फेरो रथ ।

सारथी—आयुष्मान् उपवन न चलेंगे ?

सिद्धार्थ—रथ फेर लो, मित्र ! लौटो, निवासको लौटो ।

[रथकी ध्वनि]

शुद्धो०—महोप, दु खी क्यों हुए ? क्या सकटके भयमे ?

काल०—आग्वस्त हो, राजन्, सकटकी नवजातपर छाया तक नहीं पड़ेगी।

[फिर नालककी ओर देखकर] भागिनेय, भाग्यवान् है तू, सुनेगा, मैं अभागा जो शाक्यमहको सुन न सकूँगा।

दृश्य २

वाचक—अकुर बढ चला, कोपले फूटती गयी, माया स्वर्ग मिथार चुकी थी, पर माँ सी प्रजापती गौतमीका मधुमय स्नेह पा सिद्धार्थ बढ चले। आचार्य विश्वामित्रने ज्ञान दिया, शास्त्राचार्यने हस्तलापव। पर पिताका अन्तर आकुल था। उसमे चोर घुमा था, पुत्रकी भावी प्रव्रज्याका चोर।

वाचिका—उसने तरुणके चारो ओर विलासकी परिस्रा बाँधी। तीन-तीन महल खडे किये—शीतकालके, ग्रीष्म और वर्षाके। उनके उद्यानोमे पद्मसर लहराने लगे, नील श्वेत रक्तिम कमल अभिराम डोलने लगे। शरद् और शिशिर, हेमन्त और वसन्त, निदात्र और वर्षा अपने ऋतु-वैभवसे उन महलोको, उनके पराग भरे उद्यानोको निहाल करने लगे। मधुसेवी मंदिर नारियोके बीच मादक लावण्यकी धनी थी स्वयं सिद्धार्थकी प्रिया गोपा, दण्डपाणिकी कन्या यशोधरा। पर इस विलासके विपुल कोटमे भी कुमार गौतमके मुगपर चिन्ताके बादल डोल जाते, कवल कुम्हला उठता। कुमार पुष्करिणीके तीर चले जाते, चुपचाप। जामुनके पेड तले जा बैठने, समाधिमें नेत्र मुँद जाते। और वृक्षोकी छाया लम्बी हो जाती पर जामुनकी छाया निष्कम्प खडी रहती।

वाचक—और तभी एक दिन सैन्यव घोडोसे जुडे रथपर चढ सिद्धार्थ जब उद्यानकी ओर राजमार्गपर चले।

[रथ-गमनकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—सौम्य । कौन है यह ? इसके तो केश भी औरोकेसे नही ?

सारथी—वृद्ध, कुमार, वृद्ध है यह । सारे जीवधारियोंको इसीकी भाँति एक दिन जराजर्जर होना होता है ।

सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको, जरा जिसमे जीवधारीको गिथिल कर देती है । लौटो, मित्र, फेरो रथ ।

सारथी—आयुष्मान् उपवन न चलेंगे ?

सिद्धार्थ—रथ फेर लो, मित्र । लौटो, निवासको लौटो ।

[रथके लौटनेकी ध्वनि]

शुद्धो०—[प्रवेश कर] सारथि, कुमार इतने शीघ्र कैसे लौटे ?

सारथी—देव, उन्होंने वृद्ध देखा है, और उन्होंने जो वृद्ध देखा तो मसारसे विरक्त हो चले ।

शुद्धोदन—मेरा नाश न करो । शीघ्र नृत्यका आयोजन करो । विलासमे रम कर फिर वह मसार तजनेका विचार न करेंगे ।

वाचक—राजाने पहरेपर दुहरे सतरी बिठा दिये । दिन बीत चले । और एक दिन उसी रथपर, उसी राजपथ पर—

[रथकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—मित्र सारथि, कौन है यह जर्जरकाय, स्थूलोदर, पाण्डुगात्र, कांपता, कराहता ?

सारथी—रुग्ण, कुमार, रुग्ण । सभी जीवधारियोंको एक दिन ऐसे ही रोग का शिकार होना होगा ।

सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको, रोग जिसमे इतना प्रवल होकर काया-को व्यर्थ कर देता है । लौटो, मित्र, फेरो रथ ।

सारथी—आयुष्मान् उपवन न चलेंगे ?

सिद्धार्थ—रथ फेर लो, मित्र । लौटो, निवासको लौटो ।

[रथकी ध्वनि]

शुद्धोदन—(प्रवेशकर सावेग) मारथि, कुमार इतना गीत्र कैसे लौटे ?

सारथी—देव, उन्होंने रुग्ण देखा है, और उन्होंने जो रुग्ण देगा तो ममार-
मे विरक्त हो चले ।

शुद्धोदन—मेरा नाश न करो । क्रीडाओका आयोजन करो ।

वाचक—और पहरेए दुगुने हो गये, फिर उमी रथपर, उमी राजपथ
पर—

[रथकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—यह कौन, मित्र मारथि, निस्पन्द, निर्जोव ?

सारथी—मृतक, कुमार, मृतक । जीवधारियोंकी अन्तिम गति यही है,
मरण ।

सिद्धार्थ—विकार है ऐसे जन्मको जिमका अन्त मरण है । लौटो मित्र,
फेरो रथ ।

[स्वल्प विराम]

वाचक—और शुद्धोदनने जो यह सुना तो पहरेओकी मख्या दुगुनी कर
दी, क्रीडाका आयोजन बढ़ा दिया । फिर एक दिन उमी रथपर,
उमी राजपथपर—

[रथकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—मित्र मारथि, यह कौन, दीप्ताननवारी ?

सारथी—भिक्षु, कुमार, परिव्राजक ।

सिद्धार्थ—हाँको मित्र, रथ हाँको, शिथिल न करो उमे । उपवन चलो ।

वाचक—तत शिव कुसुमितवालपादप परिभ्रमत्प्रमुदितमत्तकोकिलम् ।

विमानवत्सकमलचारुदीर्घिकं ददर्श तद्वनमिव नन्दन वनम् ॥

उद्यान क्या था, नन्दनवन था, फूले तरुओपर मत्त कोकिल जम
रहे थे, सुन्दर दीर्घिकाओमें कमल विकसित थे—विन्मय विम्काग्नि
नेत्रोंसे वहाँ मुन्दरियोने कुमारका स्वागत किया । विविध चेष्टाओ-

से, ललित पदावलिसे, प्रणय उपहारसे वे कुमारको आकृष्ट करने लगे । पर कुमार सयमसे डिगे नहीं ।

सिद्धार्थ—क्या ये नारियाँ अपने यौवनको क्षणिक नहीं समझती ? रूपसे उन्मत्त हैं ये, जरा जिसे नष्ट कर देगी । हा धिक् ।

[घुंघरूकी आवाज]

एक गणिका—प्रियतम ।

सिद्धार्थ—[अपने आप] निश्चय ये अपनेको रोगसे आक्रान्त नहीं देखती, तभी तो व्याधिभरे जगत्में ये इस प्रकार प्रसन्न हैं ।

दूसरी गणिका—पद्मलोचन ।

सिद्धार्थ—[अपने आप] सर्वापहारी मृत्युसे अनुरक्ति होनेसे ही ये स्वस्थ और निरुद्विग्न खेलती हैं, हँसती हैं ।

नारी स्वर—भक्ति-लेख सम्पन्न करो, अभिराम तरुण, कपोल उत्सुक हैं, रागरजित करो इन्हें ।

सिद्धार्थ—[अपने आप] जरा-व्याधि-मृत्युको जानता हुआ कौन बुद्धिमान निरुद्विग्न रह सकता है ? प्रगट है कि जैसे एक वृक्षको गिरते देखकर दूसरे वृक्ष शोक नहीं करते, जरा-व्याधिसे पीडित जीवों और मृतकोंको देखकर इन्हें भी शोक नहीं होता ।

उदायी—[प्रदेशकर] कुमार, राजा द्वारा नियुक्त तुम्हारा योग्य मित्र हैं । प्रेमाकुल कुछ कहना चाहता हूँ ।

सिद्धार्थ—बोली मित्र ।

उदायी—मित्र भावसे कहता हूँ, कुमार, नारियोंके प्रति उदारताका यह अभाव तुम जैसे तरुणके योग्य नहीं । विशालाक्ष, हृदय विमुख होते भी अपने रूपके अनुरूप उनके अनुकूल आचरण करो । वामचारिणी इन नारियोंकी उपेक्षा न करो । साहचर्यका उपभोग करो ।

सिद्धार्थ—मित्रतामूचक तुम्हारे वचन, तुम्हारे अनुकूल ही है, सौम्य । मैं विषयोकी अवज्ञा नहीं करता, पर जगत्को अनित्य जानकर उसमें मेरा मन रम नहीं पाता । आनन्दपर जरा ताक लगाये बैठी है, विलासपर व्याधि बलवती है, सौन्दर्यपर मृत्युकी छाया डोलती है, कैसे भोगूँ इन्हे मित्र ।

उदायी—वयस्य, अनेक ऋषियो-देवताओंने भी इस प्रकारके दुर्लभ भोगोका अनुधावन किया है और इनकी ओर उनके मनमें मोह उत्पन्न हुआ है किन्तु तुमको तो ये दुर्लभ भोग स्वतः प्राप्त हुए हैं । तुम इनकी उपेक्षा क्यों करते हो ?

सिद्धार्थ—मैं अस्थिर सुखकी चरितार्थताको प्रमाण कैसे मानूँ ? सयतात्मा-को विषयोमें आसक्ति नहीं होती । कैसे रमूँ, क्षयकारक विषयो-में ? मृत्युको अनिवार्य जानते हुए भी जिसके हृदयमें काम उदय होता है, उसकी बुद्धि लोहेकी बनी समझता हूँ, क्योंकि महाभयके होते वह प्रसन्न होता है, रोता नहीं ।

[नेपथ्यमें]

असशयं मृत्युरिति प्रजानतो नरस्य रागो हृदियस्य जायते ।

अयोमयी तस्य परैमि चेतना महाभये रज्यति यो न रोदिति ॥

[प्रकाशका सूचक संगीत]

१५५—अपने प्रसाधनको इस प्रकार व्यर्थ जान विहार-भूमि की प्रमदाओंने अपने मडनकुसुम ममल डाले, फिर प्रणय-चेष्टाओंके निष्फल होनेपर कामका निग्रह करती, भग्न मनोरथ होकर नगरको लौट गई ।

ततो वृथाधारितभूषणस्रज कलागुणैश्च प्रणयैश्च निष्फलं ।

स्व एव भावे विनिगृह्य मन्मथ पुर ययुर्भग्नमनोरथा स्त्रिय ॥

दृश्य ३

वाचक—विहार-भूमिमें दिन भर विनोदकर सिद्धार्थने पुष्करिणीमें स्नान किया । फिर विविध प्रसाधन अलकरणोंसे युक्त हो उत्तम रथपर चढ़ वे जैसे ही महलोकी ओर चले, दासी आ पहुँची ।

दासी—[उल्लासभरे शब्दोंमें] आर्य, शुभ हुआ । तनय ।

सिद्धार्थ—अशुभ हुआ, राहुल । वन्धन उत्पन्न हुआ ।

वाचक—राजाने नवजातका नाम राहुलकुमार रख दिया । उधर क्षत्रिय कन्या किसान गोमतीने अपने प्रासादसे नगरकी परिक्रमा करते बोधिसत्त्वकी शोभा देखी । फिर हर्ष गद्गद उसने उदान कहा—

निव्वुता नून सा माता, निव्वुतो नून सो पिता ।

निव्वुता नून सा नारी यत्साय ईदिसो पत्ती ॥

[निदान कथा]

परम शान्त है वह माता, परम शान्त है वह पिता ।

परम शान्त है वह नारी, जिसका यह पति है ।

सिद्धार्थ—सच कहा इसने । परम शान्ति खोजनी है मुझे, निर्वाण पद पाना है । लो, मारधि, कल्याणी किसान गोमतीको मेरा यह भुवताहार दो । कहो उससे, फले उसकी वाणी । [मुक्ताहार देता है] यह हार उसकी गुरु-दक्षिणा हो । चला मैं अब विजनकी ओर ।

वाचक—जरा-मरणके विनाशके लिए वन जानेकी इच्छा करनेवाले बोधिसत्त्वने अनिच्छासे महलोमें प्रवेश किया, जैसे वनैला हाथी पालनू हाथियोंको घेरने करता है । फिर पिताके समीप जा वह विनीत हो बोला—

सिद्धार्थ—राजन्, मोक्षके हेतु प्रव्रज्या चाहता हूँ, कृपया आज्ञा करे ।

गुलोत्त—[आंतुओंने रस्ती काँपती आवाज] हे तात, रोको इस

बुद्धि को । यह समय तुम्हारे धर्म की गरण जाने का नहीं ।
यौवन का सुख भोग लेने से तपोवन सुखद होता है ।

सिद्धार्थ—तपोवन की गरण न जाऊँ, राजन्, जो चार बातों में श्रीमान्
मेरे प्रतिभू हो—मेरे जीवन पर मृत्यु का अधिकार न हो, रोग मेरे
स्वास्थ्य का हरण न करे, जरा मेरे यौवन को विकृत न करे, न
विपत्ति मेरी इस सम्पत्ति को हरे ।

शुद्धोदन—[कुछ चिढ़कर पर कातर स्वर में] इस अत्यन्त बड़ी हुई
बुद्धि को तजो, क्रमरहित व्यवसाय का उपहास होता है ।

वाचक—बोधिसत्त्व अपने महलों में गया । नाना अलङ्कारों में विभूषित
देवनारियो-मी सुन्दरियों ने वाद्य-नृत्य में उसका प्रमादन आरम्भ
किया । मुगन्धित दीप-वृक्ष निर्वात बल रहा था, कालागुरु और
धूप के धुँएँ से प्रासाद गमक रहा था । कुमार कञ्चन-गैया पर
जा सोया ।

नर्तकी १—[दूसरी से] कुमार निद्रागत हुए, आ, सो रहे अब ।

नर्तकी २—आ, निद्रा नाद में कोमल होती है, निम्पन्द मोने दे इन्हे, आ ।
[सो जाती है]

[सङ्गीत द्रुततर । निर्वेदसूचक सङ्गीत]

सिद्धार्थ—[जागकर पलंग पर बैठता हुआ] आह ! सौन्दर्य कितना
कुरूप है । निद्रागत लावण्य कितना बीभत्स । निरावृत शरीर
कितना ही स्वादु है उतना ही विनोता । अथर अमृत रस के चपक
कहलाते हैं, उनसे बहती राल को कामुक नहीं देग पाता । मन्दिर
अवलोकन कितना आकर्षक होता है, कितना मादक, पर उसका
निद्रागत रूप कितना अभोग्य है । मण्डनगत शरीर कितनी छद्मता
है, प्रकृत कितना अशोभन । चारों ओर अस्तव्यस्त पड़ी इन
नारियों में से प्रत्येक किमी-न-किमी के हृदय में आँधी उठा देती है,
पर इनको इस स्थिति में कोई देखे ! आह कष्ट, हा, शोक, आज

ही महाभिनिष्क्रमण करना होगा । [पलंगसे उठकर द्वारके पास जाकर] कौन है ?

छन्दक—मैं हूँ, आर्य, छन्दक ।

सिद्धार्थ—महाभिनिष्क्रमण करूँगा । अश्व प्रस्तुत करो ।

छन्दक—अच्छा, देव ।

[घोड़ेके हिनहनानेकी आवाज]

[प्रयाणसूचक सङ्गीत]

वाचक—बोधिसत्त्व चला । चलते हुए उसने एक बार शयनकक्षमें झाँका । दासियाँ, सखियाँ जहाँ-तहाँ पड़ी थी । वस्त्र उनके खुले थे, अस्तव्यस्त । कुसुम-कोमल शैयापर बलती दीपशिखा-सी सोती थी वह कोलिय दण्डपाणिकी गोपा, कपिलवस्तुके शाक्य प्रासादकी कौमुदी यशोधरा, शिशुके मस्तकपर अभयका हाथ रखे, आराध्यको स्वप्नमें सोचती, रोकती । न रुका स्वजन । मार्तण्ड सरीखा शिशु एक बार जनकके अन्तरमें चमका । खीचा उमने उसे सहस्र करोसे । पर स्वजन रुका नहीं । ससारका स्वजन था वह, चल पड़ा । रोते विश्वके आँसू पोछने । यह महाभिनिष्क्रमण था । कपिलवस्तु जागा । महामणि खो चुकी थी ।

सिद्धार्थ—कन्यक, उड़ चल । बुद्ध बननेमें सहायक हो । आज तू मुझे एक रात तार दे । मैं सारे लोकको तारूँगा, तुझे भी ।

[घोड़ेके हिनहनानेकी आवाज]

जाना, कन्यक, ले चलेगा तू मुझे, शाक्य भूमिके परे ? [छन्दकसे] और छन्दक ।

छन्दक—आज्ञा, स्वामी ।

सिद्धार्थ—नाहम, छन्दक, साहम कर । भवबन्धनके काटनेमें सहायक हो,

तेरे बन्धन भी मैं काटूँगा । उड़ चल, चला अ, कन्यककी लीक-लीक ।

छन्दक—दिशाओके परे, स्वामी । जब तक तनमे माँस रहेगी कन्यककी लीक न छोड़ूँगा, न स्वामीकी छाया ।

एक धीमी भारी आवाज—मित्र, सिद्धार्थ, मत निकलो । आजमे मातवे दिन तुम्हारे लिए चक्ररत्न प्रकट होगा । दो हजार छोटे द्वीपोंके साथ चारो महाद्वीपोपर राज करोगे । लौटो, मित्र ।

सिद्धार्थ—कौन ? यह किसकी आवाज है ? कौन हो तुम भला ?

आवाज—वशवर्ती हूँ ।

सिद्धार्थ—जाना, काम, जाना, मार हो तुम । जानता हूँ तुम्हे । बार-बार तुमने मुझे वहकाया है, बार-बार । तुम्हारा जाल मैं भेद गया हूँ । फिर भेद जाऊँगा । जाना, मार, जाना, तुम्हे, पर तुम भी जान लो कि मुझे चक्ररत्नसे, राजमे, काम नहीं । मैं तो माहमिक लोक वातुओको विनिन्दित कर बुद्ध बनूँगा ।

मार—[भारी, दूर हटती आवाज] अच्छा जा, चला जा । पर याद रख, जब कभी तेरे मनमे कामनाजनित वितर्क, द्रोहजनित प्रितर्क, हिंसाजनित वितर्क उत्पन्न होगा, तब मैं तुझे समझूँगा ।

वाचक—अथ स विमलपङ्कजायताक्ष पुरमवलोक्य ननाद मिहनादम् ।
जननमरणयोरदृष्टपारो न पुरमह कपिलाह्वय प्रवेष्टा ॥
तव विमल कमलोके समान विशाल नेत्रो वाले कुमारने नगम्की ओर देख कर मिहनाद किया—

“जन्म मरणका अन्त देखे बिना कपिलवस्तु नामके इस नगरमे फिर प्रवेश न करूँगा ।”

शाक्य और कोलिय छूट गये, रामग्राम भी छूटा । अनोमाके तट-पर वह महायानी जा खड़ा हुआ ।

दृश्य—४

सिद्धार्थ—छन्दक, इस नदीका नाम क्या है ?

छन्दक—अनोमा, देव ।

सिद्धार्थ—हमारी प्रव्रज्या भी अनोमा होगी, महत्त्वकी, जैसी यह नदी है ।

[फिर घोड़ेको एड़ मार धारा लाँघता हुआ]

सौम्य छन्दक, तू मेरे आभूषणों और कन्थकको लेकर जा, मैं प्रव्रजित होऊँगा ।

छन्दक—प्रव्रजित मैं भी होऊँगा, देव ।

सिद्धार्थ—तुझे प्रव्रज्या नहीं मिल सकती, तू लौट जा ।

छन्दक—देव ।

सिद्धार्थ—नहीं मिल सकती प्रव्रज्या तुझे, मैं कहता हूँ, नहीं मिल सकती ।

[छन्दकका लम्बी साँस लेना]

सिद्धार्थ—[अपने आप] मेरे ये केश श्रमणके योग्य नहीं हैं । और बोधिमत्त्वके केश काटने योग्य कोई दूसरा है भी नहीं । इससे मैं अपने ही आप इन्हे खड्गसे काटूँगा ।

वाचक—फिर दाहिने हाथमें खड्ग ले बाएँ हाथसे मुकुट सहित केश पकड़ बोधिमत्त्वने काट डाले । शेष दो अंगुल भरके केश दाहिनी ओरसे घूम सिरसे चिपक गये । जीवन भर फिर वे वैसे ही बने रहे ।

सिद्धार्थ—[आकाशमें मुकुट सहित केश चूड़ा फेंकते हुए] लो, देवताओं, नम्रहालो इन्हे । तुमने मुझे बुद्ध होनेके लिए तुषित स्वर्गसे पृथ्वी पर भेजा था, अब सम्रहालो इन्हे । यदि मुझे बुद्ध होना हो तो ये अधरमें टँग जाय, नहीं भूमिपर गिर पड़े ।

छन्दक—आश्चर्य ! आश्चर्य ! केश-गुच्छ तो अधरमें टँग गये । धन्य, देव, धन्य ।

सिद्धार्थ—आश्चर्य कुछ नहीं, छन्दक । वोविसत्त्वके लिए कुछ भी अम-
म्भव नहीं ।

छन्दक—वन्य, वोविसत्त्व ।

सिद्धार्थ—देख, छन्दक, यह काशीके बहुमूल्य दुकूल भिक्षुके योग्य नहीं ।

योगमे युक्त भिक्षुके त्रिचीवर, भिक्षापात्र, चुरा, मुई, कायबन्धन
और पानी छाननेका वस्त्र, वस यही आठ वस्तुएँ होती हैं । सो
तू ये मेरे पहलेके वस्त्राभूषण ले ।

छन्दक—नहीं देव, मैं इन्हे

सिद्धार्थ—ले, छन्दक, ले इन्हे । तर्क न कर ।

[छन्दक लम्बी साँस भरकर वस्त्राभूषण ले लेता है ।]

सिद्धार्थ—छन्दक । मेरे वचनसे माता-पिताको आरोग्य कहना । और सौम्य,
गरुड समान वेगवान् इस घोड़ेका अनुमरणकर मेरे प्रति तुमने
भक्ति और पराक्रम दिखाये । यद्यपि अन्यमनस्क हूँ परन्तु तुम्हारे
इस स्वामिस्नेहने वरबस मेरा हृदय हरण कर लिया है । तुमने
मेरा बड़ा प्रिय किया । आभार मानता हूँ । अब अश्व लेकर लौट
जाओ । मैं अभीष्ट स्थलको पहुँच गया ।

छन्दक—देव ।

सिद्धार्थ—सुनो छन्दक, राजाको बार-बार प्रणाम कर निवेदन करना—
जरा और मरणके विनाशके लिए मैंने तपोवनमे प्रवेश किया है,
निश्चय स्वर्गकी तृष्णामे नहीं, स्नेहके अभावमे नहीं, क्रोधमे नहीं ।
वियोग निश्चित है । पर स्वजनमे वियोग न हो, इसके माय उपाय
मोक्षकी खोजमे हूँ । मुझे याद न करे ।

छन्दक—देव, नदी पकमे फँसे हाथीके समान मेरा मर्म मथ रहा है ।
आपका निश्चय सुनकर जो मैं घोड़ा ले आया वह भी दैवने मुझमे
बलात् कराया । सुमन्तने जैसे राघवको वनमे छोड़ा था, वैसे ही

आपको तजकर जाना मेरे लिए असह्य हो रहा है । नगरको कैसे जाऊँ ?

[घोड़ेके करुण हिनहिनानेका स्वर]

छन्दक—हा, कन्थक ! रो नही, कन्थक !

सिद्धार्थ—(घोड़ेको प्यारसे छूते हुए) कन्थक, तुमने मुझे तार दिया । जाओ, तुम्हारा शील मानवीय है । जाओ छन्दक ! जाओ कन्थक !

[छन्दकका सिद्धार्थकी परिक्रमा कर घोड़ेको ले जाना]

[घोड़ेकी टाप]

सिद्धार्थ—गोपे, जानता हूँ तुम्हारे मर्मकी पीडा । उसी पीडाके शमनके लिए काषाय लिया है, कि तुम्हारी जराविगलित काया स्वयं तुम्हे धिनीनी न हो जाय, कि तुम्हारा वत्स जरा-मरणका शिकार न बन जाय । तुम्हारे लिए, तुम्हारेसे ही असह्य वत्सोके लिए विजनमे जाता हूँ । तपसे काया डाहूँगा, बोधिके लिए ज्ञान गुनूँगा, कि लौटूँ तो दुःखके शमनका उपाय लेकर, जराकी औपधि लेकर, अमरता लेकर ।

[देवताओंकी आवाज धन्य ! धन्य ॥]

और दिशाओ, सुनो । परिकर बाँधकर प्रासादसे निकला हूँ, प्रव्रज्यासे जो निकलूँगा तो केवल निर्वाणमे प्रवेश करनेके लिए । और, देवताओ, तुम भी सुनो । यदि जन्म-मरणके अन्तका उपाय न दूँ नका, जनहित, जनसुखके साधन प्रस्तुत न कर सका, सबुद्ध न हो सका, तो देवो, नगरको न लौटूँगा, न लौटूँगा ।

नेपथ्यमे—“नाह प्रवेसि कपिलस्य पुर श्रव्राप्य जातिमरणान्तकर
स्थानात्तन शयन चक्रमेण न करिष्य ह कपिलवस्तुमुख ।
यावन्त लब्धवरबोधिमया श्रजरामर पदवर ह्यमृत ॥”

रूपमती और बाज़वहादुर

दृश्य १

२

[उज्जैनीमे सिप्रा तटका प्रासाद । नदीकी ओर खुलनेवाली खिडकियाँ । दूसरी ओर फँला बरामदा, जिसमे लटकते पिजडोमे चहकते पक्षी—शुकसारिकाएँ । नीचे नजरबाग ।

चबूतरेसे हल्के उठता प्रभातीका स्वर । बाजोके सुरमे मिली मानव कण्ठजी हल्की ध्वनि । सामने दूर क्षितिजसे उठता सूरज-का लाल गोला । रूपमती अभी सो रही है । नदीके ऊपरसे बहती गीली दयार धीरे-धीरे रूपमतीके जहाँ-तहाँ खुले अंगोको परसती है, छनकर आती लाल धूपके स्पर्शसे चेहरा लाल कमल सा खिल उठता है ।]

रूपमती—[अलसाई पलकें उठाती हुई, करवट बदलती] हाय राम !

इतनी धूप निकल आई ?

मजरी—मो जा, मो जा, रूपा, पिछली रात देरसे मोई थी ना ।

रूप०—[अलसाती हुई] अरी, अब क्या सोऊँ ? कितना तो दिन चढ़ आया । और देख—

मजरी—अरी, सो जा, अभी पर्दे खींचे देती हूँ ।

[उठती है]

रूप०—[अँगड़ाती हुई पड़ी-पड़ी] दिनकी ललक है, कहीं पर्दों से ढकती है, मजरी ? और सूरजकी हजारों किरने ।

मजरी—सूरज हजार हाथों तुम्हे भेट रहा है, रानी, अभी तो पुलक रही हो, अनारकी डहकती कली जैसे खुल गई है ।

रूप०—अच्छा, अच्छा, वन्दकर अपनी कविता । [सिर विस्तरसे जरा उठाती उठाती] भल्या नू कर क्या रही है ? और बेला कहाँ है ?

मजरी—पान लगा रही थी । (पास आकर पान देती हुई] यह लो, यह गिलीरी । बेला पछियोको दाना दे रही है । [जोरसे बाहर-
की ओर मुँह करके] अरी, बेला ! ओ बेला ! कहाँ मर गई !

बेला [दूरसे]—आई, मजरी ! [आती है]

रूप०—बेला, ले तू मेरा पान खा ले । मुझे अलकम लग रही है । ले, लेले [हाथका पान बढ़ाती है]

मजरी—जवान तो कैची भी चलाये जा रही है और मुँह चलाते अलकम लग रही है ।

रूपमती—ले, ले बेला, पान यह । भला कर क्या रही थी ?

बेला—[पान लेकर मुँहमे डालती हुई] जरा पछियोको चारा बाँट रही थी । पर कुछ पूछ मत रानी । निगोडी मैनीने तो आज गजब कर दिया ।

रूप० और मजरी [एक साथ उत्सुकतासे]—क्या हुआ ? क्या हुआ ?

बेला—अरी, वम क्या कहूँ । निगोडीके ठेस देखकर मैं तो दग रह गई ।

मजरी—अरी कुछ बता तो । तेरे नपरे किसमे कम है भला ?

बेला—तुझसे । जब मानमिह आता है तब कैसे भवै नचाती है, जैमे

रूप०—ले, अब तू हो लहक उठी ।

देखो, रानी, यह तुम्हारी मैनी है न ?

०—सारिका न ?

ला—हाँ, सारिका, ऐसा हुआ

जरी—तूने तो मैना-मैनी एकमे कर दिया या न ?

बेला—[जल्दी जल्दी] हाँ । ऐसा हुआ कि अभी पटी हुई थी, जाँग खुल गई थी, कि मैनीने रोजकी तरह पुकारा—‘जागो रे जागो । जागो रे जागो ।’ पहले तो मैंने फान न दिया । पर जब मैनीन ‘जागो रे जागो ।’ की रट लगा दी तब मैं उठी । दाना दिये जो उधर पहुँची तो देखती क्या है कि मैनी आज गोजी तरह

कमरेकी ओर नहीं देखती, सामनेके पिंजड़ेकी ओर मुँह किये जैसे अपने नरको पुकार रही है ।

रूप०—अच्छा ।

मजरी—और नर ?

बेला—और नर ? नरकी न पूछो । बावला, जैसे बावला हुआ जा रहा है । पख फडफडाता पिंजड़ेके द्वारपर बार-बार चोच ठकराये जाय, टकराये जाय । जरा सी की चोच और चाँदीका पिंजड़ा ।

मजरी—बेचारा ।

रूप०—फिर ? फिर ?

बेला—फिर मैंने दोनोंको एकमे कर दिया ।

रूप०—एकमे कर दिया ?

बेला—हाँ, नरको भी मैनी वाले पिंजड़ेमे जा डाला ।

मजरी—तब ?

बेला—मैनी सहसा चुप हो गई । उसकी ओरसे मुँह फेर लिया ।

रूप०—अच्छा, देरसे पुकारती रही थी न ।

बेला—देरमे पुकारती रही थी । पर उसका दिमाग तो देखो—चुप कर गई । और बेचारा नर बार-बार उसकी गरदनपर अपना सिर, अपनी गरदन रखे, अपनी चोचका चारा उसकी चोचमे देना चाहे, पर मैनी कि कोप किये हो जाय, कोप किये ही जाय ।

मजरी—अरे यह तो आदमीकी तरह ।

बेला—आदमीकी तरह, मजरी, बिल्कुल आदमीकी तरह । मैना इस वगलमे उस वगल जाय, उन वगलसे इस वगल आये, पर मैनी जैसे मन मारे, सुध बुध खोये, चोच लटकाये चुप ।

मजरी—निगोड़ी ।

बेला—निगोड़ी सुनती ही नहीं ।

रूप०—अरे इतना मान तो मानमिहमे मजरी तक नहीं कमती, बेला ।

[रूपमती बेला खिलखिला उठती हैं]

मजरी—अच्छा ! अच्छा देखूँगी । अरे तू तो अपने रमिकाको वो वो नान नचायेगी कि वही जानेगा । जरा डीरा पड तो जाने दे ।

रूप०—हाँ, बेला, फिर क्या हुआ ?

बेला—फिर क्या होता, रानी ? मैनी कोप किये बेठी है और मैना वैसे ही उसके चारो ओर मँडरा रहा है ।

रूप०—चल तो देखे जरा ।

[तीनो वरामदेमे जाती हैं । मैनी वैसे ही कोप किये है, मैना उसे जैसे मना रहा है ।]

रूप और मजरी—हाय राम ।

बेला—देखो तो जरा निगोडीको ।

रूप०—[मैनीमे] मारिके, मानो न—यह तुम्हारा नहेता तुम्हे तितना मना रहा है, कितना बेचारा है यह ।

[मैनी फिर जाती है, मैनेकी ओर पूँछ कर लेती है]

तीनो—अरे, वाह रे तुम्हारे नखरे ।

मंजरी—क्या लेगी चुनरी ? अँगिया ?

—नौलगा हार ।

०—फिर मानमिहमे माँग ।

—चल चल । बड़ी आर्द नौलगा हार देने ।

प०—अच्छा बेला, एक काम कर, मैनावाया वह गायी पिजड़ा ता जरा उठा ।

[पिजडा उठाकर बेला रूपमतीके हाथमे देती है । रूपमती दोनो पिजडोके मुँह एक दूसरेमे लगा देती है । पुचफाकर मैनाको अपने पिजडेमे बुलानती है । मैना नहीं जाता, फिर हाथ की उँगलियोंके सहारे उसे उसके पिजडेमे गाँच लेती है ।]

मजरी—अच्छा, यह तो खूब सोचा ।

बेला—[मैनीसे] ले अब, चला नैनतीर । कर मान अब जरा ।

रूप०—अरी बावली, मानका नाम न ले, वरना कही मजरीके भी न चढ़ जाय नामका जादू ।

मजरी—[मुंह चिढ़ा कर दुहराती हुई] हाँ-हाँ, कही मजरीके भी न चढ़ जाय नामका जादू ।

बेला—वह देख, उधर ।

[सब मैनीको देखती है । मैनी अपने पिजड़ेके दरवाजेपर चौच वरसाये जा रही है । टक-टककी आवाज]

मजरी—[प्यारसे] दे दो, रूपा, उसे उसका चहेता । बड़ा उपकार मानेगी ।

रूप०—हाँ, हाँ, तूने जो बड़ा उपकार माना । तुझे भी तो कुछ दिया था । अच्छा देखें ।

[रूपमती मैनाको फिर मैनीके पिजड़ेमे कर देती है । मैनी अबकी लपक कर मैनाकी गरदनपर अपना सिर रख देती है ।]

बेला—देखा, कैसे सिर उसकी गरदनमे गडाये जा रही है ?

मजरी—या खुदा, मुराद वार आये, हमारी रानी रूपकी भी ।

रूप०—अच्छा । अच्छा । यह तो सलीमशाह बन गई ।

मजरी—पर इस कलूटीके नखरे तो देखो ।

बेला—अरे कलजुग है न । वस मानुसका तनभर नहीं पाया है, वरना आदमोसे पछी कम क्या है ?

रूप०—कलजुग नहीं, बेला, वसन्त जो है, पराग जो झर रहो है । दीराये जामोको नहीं देखती क्या ?

[अमराइयोमे सहसा कोयल कूक उठती है...कू ऊ ऊ । कू ऊ, ऊ ।]

बेला—ले कूक उठी पापिन, मजरोकी दुवदायी मौत बोगये आमोकी
झुरमुटमे ।

[मजरी गा उठती है—]

मजरी—

मनवां क वाती सनेह क सौंचल
लहकि बरे मधु रतिया,
कोइलि सौति सतुर वनि टेरे
साति उठे नित छतिया,
राति विजन मन जियरा डोले
कसकि उठे पिय वतिया,
अमवां की डरियां भँवर गुँजारें
मदन करे धरहरिया,
नेह गरे निमि बागर अंपियन
डहकि डहकि लिपूँ पतिया,
मदन मोहाइल कान्ह कोहाइल
कैसे कटे दिा रतिया ?
डगर डगर वन विक्रमल आधे
जगर मगर करे रतिया,
आव मजन मधु माम मेगइल
दरम देवाव मुरतिया ।

[फेड आउट]

दृश्य २

[माझूका महल । झीलसे उठती हवा बारहदरीका कोना-कोना भर देती है । मालवाका सुल्तान बाजबहादुर गावतकियेके सहारे बैठे अपने बचपनके दोस्त खफीसे बयान करता जा रहा है—]

बाज—इतनी रूपसी, खफी, कि हूरे शरमा जायें, चितेरा अपना भाग सराहे ।

खफी—जहाँपनाहका हरम इन्दरका अखाडा है, आलमगीर ।

बाज—सूना है, खफी, मेरा हरम सूना है । पतझड़की तरह सूना, मेह वरस जानेपर आसमानकी तरह उदास । काटता है वह हरम, खफी ।

खफी—जाहिर है, आलमगीर, वरना जन्नतमे इस कदर मनहूसियत छाई रहती ।

बाज—जन्नत ! जन्नत यहाँ कहाँ, खफी ? जन्नत तो वह जमीन है जिसपर रूपमतीके पैर पड़ते हैं । काश कि वह यह दर्द जान पाती, जान पाती कि बाजकी दुनियामे जलजला आ गया है. कि उसके दिल-

बाज—[सरककर खफीका हाथ पकड़ता हुआ] मनपर कावू क्योंकर करूँ, दोस्त ? मनमे तो आँधियाँ चल रही हैं, तूफान अँगड़ा रहा है । कैसे कावू कावू मनपर ? कर न कोई हिकमत, पखेरू तूफानमे पनाह ले ।

खफी—हिकमतकी क्या कभी, शाहआलम ? बाजके पजोकी विसात ब्रटी है ।

बाज—बाजके पजे अब न खुलेगे, खफी । उनके गूनी नाग्न गिर पते हैं । तुमने कभी प्यार नहीं किया, मेरे दोस्त, न जाना वह दर, ताकत जिसमे दोजानू हो जाती है, तलवार बेकार । मैंने गुन, लगता है, कभी मुहब्बत नहीं की, वस अम्मत लूटी है, आज खुद लुटा जा रहा हूँ । [सबी आह]

खफी—इतने बेकरार न हो, जहाँपनाह । बन्दा जाता है और गुराने चाहा तो हुजूरकी मुराद पूरी होते देर न लगेगी ।

बाज—मुनो, खफी । समझी नहीं तुमने हकीकत । ताकत या फरेबमे नहीं, रूपको प्यारसे जीतूँगा, दर्दसे । पर काज वह जान पाती मेरा जलना, जान पाती कि बाजके तेवर उन भवोंके शिकार हो गये हैं जिनमे मिश्राकी लहरियोंके बल है, कमानकी लचक है, गजरकी गम है ।

खफी—मुहब्बत एक मुसीबत है, आलमगीर, और गायगी आगमें उतारना काम करती है ।

बाज—मही, दोस्त । गायर न होना तो गायद इतना बेपनाह न होता । गायगी जिम्मेका पोर-पोर रोआँ-रोआँ गोल देती है । अदनी-मे-अदनी बात समुन्दरकी तरह यादमें उमड़ आती है । उमड़कर दिलको बेकाबू कर लेती है । एक-एक अक्षर सपम पीती गार है, खफी, एक-एक अन्दाजपर मन लट्ट है । मुनो, जाने-जा । जा उमने आदाब किया, भवाली जुलार जो कमान गीना ना नीर बाजकी जुग-मी जानको चीरना चला गया । अब मल्ल उम शकटको, खफी ?

खफी—जहाँपनाह, समझ नहीं आता क्या फर्क, दम दरवा जिस तरह हुजरके दरममे ला बिटाऊ । पर उस आलमगीरका गुन अपन रूपका अंगर नहीं मारूम ? क्या अन्व जो उमने नी मपत गेपर अपना जादू टाट दिया हो । और बाजका वह जाना ।

कितनी ही अस्मतकी धनी लाजवन्ती छातूनोंके हियेका भेद बन गया है। फिर वह तो

बाज—अजब नहीं, खफी। उसका लौट-लौटकर देखना कुछ हद तक इसका सबूत भी है। पर जिस बातकी ओर तुम्हारा इशारा है उसका भरम छोड़ दो, मेरे दोस्त। 'पातुरकी बेटी' ही कहना चाहते हो ना, खफी? है पातुरकी बेटी वह रूपमती, पर मानो मेरी बात—बड़ी-बड़ी पाकदामन छातूनोंसे कही जियादा पाकदामन, उनसे कही बढकर अस्मतवाली। क्या सुनी तुमने कभी कोई ऐसी बात जो उसके आवरुमे बट्टा लगाये? भूल गये गुजरातके सलावत का किस्सा?

खफी—नहीं, जहाँपनाह, कभी कोई ऐसी बात नहीं सुनी जो उसके आवरु को बट्टा लगाये और सलावतकी मुँहकी खाई तो हिन्दुस्तान और दकनका मजाक बन गयी है, कौन नहीं जानता उसे? पर करूँ क्या, यह समझमे नहीं आता।

बाज—एक काम करो दर्दका इजहार खतमे करता हूँ, उज्जैन कासिद भेजो।

खफी—जैसी इशार्द हुजूरकी।

[बाजबहादुर लिखता है, फिर धीरे-धीरे पढता है—]

उत्त गगन पाखी प्रवर, लघौ रूप विसवान ।

पीर विकल नंना सजल, तरपत बाज परान ॥

रैन भई पीरा बढी, गुनमति कहो बखान ।

कस दैरी विरहा कटे, कस निति होय विहान ?

[फेड श्राउट]

दृश्य ३

[सिप्रा तटका रूपमतीका प्रासाद । नजरनागका वारजा । सिप्रा कलकल बह रही है । सध्या पच्छिमी आकाशमें कमजोर किरनों वाले सूरजके लाल गोलेको उठाये हुए है । रूपमती सगिणी सहित बैठी है । हवा नदीके जलको परसती मन्द शीतल बह रही है पर आषाढकी गर्मीके लिए वह काफी शीतल नहीं है । इससे मजरी गुलाबजलमें भीगा लसका पत्ता उसे भूत रही है । बेला हातकी नहाई रूपमतीके तम्ब्रे काले चमकते धुँपगले भीगे बालोको धूप-अगुरुके धुँपमें सुखा रही है । तीनों चुप हैं ।]

रूप०—[धीरे-धीरे] मित्रे, तुम्हारे जलने किानोके मुरत निमित्त गान चीतक किये है, तुम्हारे तटके कुजोने किानी ही निदातापी प्रमदाओका वीज हरा है, अपनी डग सगिनीका वीज न मेटोगी ?

[मजरी और बेला चुपचाप आँसू ढाँती हैं । बेला गिरक उठती है ।]

रूप०—जीवन बटना है तुम्हारे अरुमे, सगिनि । तुम्हारी ही लहरापर चटकर मरुते डगवमे राजा आया था । तुम्हें कर गया मायागी । किन्ता मदिर था उमका अवलान्त, किन्ता मरुत उमका दर्शन, किन्ता मदरु होगा उमका विलास ।

मजरी—नये, दिव्दान न था । आवेगा राजा । प्रेयसा भनी है । रूपमा रमिया । प्रीत्य वर, रानी ।

रूप०—दिव्दान क्या, मजरी ? उम निन्य तयड आने मरुतगा दिव्दान तया ? रग-रगते फरारी कालिया बेलेमक, पन रजन प्रीत्य उम अमरमा प्रियगा तया मरुतगा तिया

कमलवनमे अभिराम विहरनेवाले मदमत्त गयन्दका विश्वास कैमा, भोली मजरी ? जिसके रनिवासमे उर्वशीके शृगार-कुसुम उपेक्षाके उच्छ्वानोंने कुम्हला जाते हैं, रभाका मान कभी खडित नहीं होता, मेनकाका नौरभ बानी पड जाया करता है, उसका, कहती है, विश्वान कर्हू ? कहो न, मजरी, उठ आये डूबता धधकता आगका वह गोला अस्तादलके पीछेसे, कहो सिप्राको धारा मुडकर पीछेको वहने लग जाय, शायद विश्वास कर लूं पर कि वह छलिया सुलतान लौटेगा, विश्वास नहीं होता । [उच्छ्वास, बेला सिसकती जाती है ।]

मजरी—नहीं, नहीं, रूपा, जानो वसन्त जैसे अपनी कोपलोंके साथ लौटता है शरद् जैसे अपने विलासके साथ लौटता है, निदाघ जैसे मदालस लिये लौटता है, वर्षा जैसे वीरवहूटियाँ लिये । लौटेगा बाँका सुलतान भी वैसे ही । गाँव नगर आज गूँज रहे हैं इस सवादसे कि भौंरा कँवलमे बँध गया है, कि भौंरा बाजबहादुर है, कि कवल रूपमती है । दिनोकी देर है, रानी । घोर धर, सकट कटेगा ।

रूप०—कहाँ भटक रही है, मजरी, किम नपन देशमें खोई है भला ? पुरुषका विश्वान कैमा, फिर ऐसे पुरुषका जिसके मनोरथोंने कोई नीमा न जानी ? जिसके पिजडेमे पछी अपने-आप जा बैठा ? जिसके जालमे मृगी स्वत बँध गई ? [फिर बेलासे] और देख देला, वन्द कर यह शृङ्गार-मण्डन । एक आँख मुझे नहीं सुहाता यह । वेशका फल प्रियके उने आँख भर देख लेनेमे है । [मजरीसे] और मजरी, मुझे उन गाँव-नगरमे गूँजते सवादका भी कुछ भरोना नहीं ।

बेला—महाकालका भरोसा कर, रूपा । ब्रह्मा भालपर लिखते हैं महा-काल उने काटते हैं, रानी । तुम्हारा क्लेश भी काटेंगे भवानी-

पति । पूरेगे तुम्हारा भी मनोरथ, वह औपड बरसानी । मागा उनसे ।

रूप०—माँगती हूँ महाकालसे । हे घट-घटव्यापी महालाज, लहर गमेटी अपनी, दे दो अपना राग मगल मुझे । मरा तुमने भागो चीन्हा है, मतीका तुमने मान रगा है । जो तो रूपमतीने पागुरगी बेटी होकर भी कभी अपने हियेमें पुरुषकी छाया डोलने से तो तो उनका हिया सुलभ जाय, पर जो उममें उमने बाजपटागुरगी अकेली मूरत पथराई हो तो, हे देवा, उसके हियेमें तुम पैदा, कि चकवा-सा वह साजन पुरडनकी पात हटाता चक्रीग जा मिले । उसके घटमें व्यापो नाथ ।

[घोड़ेकी टाणोकी आवाज । सहसा रुकना, सबका चीकना ।]

[बेला ! ओ बेला !]

[बेला 'आई' कहती दौडी आती है । फिर रुक भरमें भागती हंसती आती है । उसके हाथमें बन्द लिफाफा है । दोनो उन्मुख उगे देगती है ।]

बेला—[हाँकती हुई] क्या रोपी, रूपा ? क्या रा, क्या दापी ?

मजरी—ओ, रूपा, गुन लिया मरामालन । मित्रा मँगाने गुँगा थी ।

[रूपमती लिफाफा गोलकर पत्र पढती है । पत्र हाथमें गाँधे धीरे-धीरे गिर जाता है । चेहरेपर चौदनी छा जाती है । हाठ खुद जाने हैं, आनन्दके आँसू चुपचाप भरने लगते हैं । पत्र उठाकर रूपमती बेलाको दे देती है । मजरी अपटकर बतार पत्र ले लेती है । पढती है—]

मजरी—उटत गगन पायी प्रवर, लायी रूप प्रियवान ।

पीर विकल नेता मजल, तरपत बाज पगल ॥

रैन भई पीरा बढी, गुनमति करा बगान ।

कम बरगे विरहा बढे, कम निनि होष प्रियान ?

मजरी—[हँसकर] देखा, रूपा, कहती थी न ।

[दोनों रूपमतीसे लिपट जाती हैं । आनन्दाश्रु उमड पड़ते हैं । तत्काल भाव भाषा धारण करते हैं । रूपमती बाजबहादुर के दोहोके उत्तरमें अपने दोहे लिख देती है—]

रूप०—

अग अग काया विकल, कन कन अगिन समान ।

भवन सिधारे बाज जब, तब निसि होय विहान ॥

बेला—धन्य, रूपा, धन्य ।

मजरी—बाह रानी, क्या दोहे लिखे हैं । सोनेको यह सुगन्ध मिली है, बाजको यह रूपमती ।

रूप०—[भरे कण्ठसे] सब महाकालकी दया है, मजरी, सिप्रा मैयाकी माया । अक्षय नीवी दूँगी, औघडदानी, कि तुम्हारे देवलमे सौ वरमतक धीकी बत्ती जलती रहे । और सिप्रे, जबतक यहाँ रहूँगी तुम्हारे तीर भी धीके दिये जलाऊँगी, चुनरी चटाऊँगी । तुम्हारे ही आशीर्वादसे मेरी आम पूजा है, मेरा उदयन रीझा है । जैसे तुमने मेरा अन्तर जुड़ाया, तुम्हारा हिया भी सदा जुड़ाता रहे । चाटुकार पवन सदा तुम्हे अपनी कोमल परससे लहराता रहे । [बेला से] और बेला, दे आ दूतको पाती । [बेला पत्र लेकर चली जाती है । घोटेकी टापोंकी आवाज ।]

[फेड आउट]

दृश्य ४

वाचिका—बाजरूपी सूर्य एक दिन निपावर्ती बनोमे निकल उज्जैनीक महलोपर उगा, रूप कमलिनी बिल उठी, माण्डूके महलो पि सारी । झीलके पास हिडोल महलके निकट विन्ध्यके शिखरपर रूपमयीनी अटारी खड़ी हुई, बारह सौ फुट नीचे निभारती तनूयलीप अपनी छाया डालती । और बाज बहादुरका मदिन मानव आतु मगिनीका परम पा पिरक उठा । दोनों कति थे, राग मी गाथा । माण्डूकी कन-कनमे गुन बसी, दिमि-दिमि बानी । गूँजी माउसा रनिया बाजबहादुर और रूपमयीके पणयवी सीमन्त मान लग । तभी एक दिन पावसके तीगरे पहर—

बाज—तुम न होती, रूप, तो आज मैं निपट कमाल होता मरा माण्डू मृता होता, मेरा माउसा वज्रजर ।

रूप०—मेरे देवता ! मेरे राजा !

बाज०—तुम भाग बनकर जाई, रूप, मैं निहाल हा गया ।

रूप०—भाग्य मेरे, गाजन, निहाल मैं हुई ।

बाज—किन्ना अन्धकार था मेरा जीवनम, रूप ! मरी, मेरा समानम गुलारा कभी न थी और मुझ वहाँ गुजार करने का दिन था ना था था । पर अतृप्ति मेरी नग-नगम जगी थी, आज बह तुम्ह पास शान्त हो गई । अब आन मजे कुछ और पाना आती न रही । बात अब नीटसा लोटा ।

रूप०—निगमना लानी बात म्या बन अपा पास 'न लोट आना '

बाज०—लोट आना, मेरी रगिति, अपन बन कम । उम अपन मी । अब नही समता ।

रूप०—भावन करे, न अब बात, उम बन कम ।

वाज०—जानो, रूप, अक्षय नीवी हो तुम मेरी, जिमे पा लेनेपर फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता ।

रूप०—वह उधर देखते हो, वाज, झीलपर अम्बर झरता जा रहा है, और

वाज०—और मेहकी उस झीनी झरझरके पीछे, लगता है, जैसे कुछ है ।

रूप०—है, वाज, उम झीनी झरझरके पीछे कुछ [तनिक रुककर]

पुरातन पुरुष ओर प्रकृति, सदाके सहचर अम्बर और धरा ।

वाचिका—और इस प्रकार वर्षों उनके गात आनन्दमे पुलकित होते रहे, एक दूसरेकी परमसे मिहरते रहे । पर आनन्दका वह वैभव दैवको न रुचा । दैव दारुण है, दम्पतिका सुख उसे अमह्य है । चक्रवाक—चक्रवाकी उसे नहीं भाते, हसके जोड़े उसे नहीं भाते, वाज और रूपका दाम्पत्य भी उसे नहीं भाया । उनपर भी उसने चोट की ।

वाचक—दिल्लीपति अकबरने मालवापर अपनी हसरतभरी नजर डाली । मालवाकी भूमि सोना उगलती थी । उस भूमिके स्वामी कबसे पठान होते आये थे । अकबर उमकी आजादी सह न सका । आदम खाँको उमने मालवा भेजा । आदम उज्जैनी आदिपर अधिकार करता गढमाण्डू पहुँचा । राजधानीपर उसने घेरा डाला । वाजका विलाम इस तीखी चोटसे तिममिला उठा । वह नेना लिये गटके सिंहद्वारमे बाहर आया । घमामान छिड़ गया ।

वाचिका—घायल वाजको लिये सेना गढमे लौटी । रूपमतीका मन कातर हो उठा । उसने महाकालको सुमिरा । एक ओर वह स्वामीकी सेवा करने लगी दूसरी ओर गढकी रक्षा । नित्य वह वाजवहादुरको चित्तारमे शरण लेनेको कहती, नित्य वह मुकर जाता । पर एक दिन जब रूपमे और न रहा गया उसने अपनी शपथ धराकर वाजको भागनेको मजबूर कर दिया । वाज फिर और उसे न टाल नजा । उमी भागनेकी रात—

बाज—न, तुमने सिपाहीकी तलवार तोड़ दी ।

स्व०—दुनियाँमें तलवारकी कमी नहीं, बान । तलवार टूटती है फेंक दी जाती है, भट्टीमें दूसरी निकल पड़ती है । फौजदारकी रमो नहीं बाज, कमी होनलेकी है, लौटकर फिर ते तेने की । और होमरा तुममें है, फौजदारने कही तपा हुआ । जाओ मेरे माई, गंगा रहते चले जाओ ।

बाज—मन्न भी तो कही हो, सपा, मुगलोंके उरमें जमीन काँपती है पहाड हिलते हैं ।

स्व०—कह दिया, बाज, गंगाके पाम जाओ—चिनौरके मुरम गजपा तुम्हारा बाज न बाँका होने देगे ।

बाज—मही सपा, गंगा दिखेर है, उनके गजपुत्र मुरमा है । पर तम चाटती हो कि वह अंग्रेज चिनौर भी मिस्ट्रीमें मिल जाय ? उस अंग्रेज आजाद गजगी विपद् नहीं दण पाती ?

स्व०—नही, बाज, नहीं । पतिव्रती नारीको मन्नम पढ़े अपना पट्टा दिखता है । मो ही दण रही हैं, मर राजा । जाओ, और दर न रग । गंगा प। रगेगे । मन्नद बैंग भी मादसादा पगामी है हमारी रक्षा करना उमरा वाक्य है । जाओ, मन्नम रहा । दर जाओ, मेर दवता ।

बाज—क्या जाता है, सपा, पर तम चला जाऊ जाईम स्व ? तुम नमन्नगी नहीं अपनी अम्मा, अपनी स्वकी और तम तम डाँडे ? सायर नहीं है बाज, क्या दर ?

स्व०—सायर नहीं है बाज, हमारा मन्नम मुम्हारा दर पात न, और लो दे पहाडिया, ये ब्रह्मद, ये जयति जात । मन्नमर तिमर उर मन्नमने कीमन दिमन दवा है । रही, सारी बा, उ। ही अम्मा की बाज । मो जाता हि मुम्हारी सपा, मुम्हारी मन्नमर कल हायर नहीं लना मन्नता । जाओ, पाई मन्नम, दर, जाओ ।

बाज—वही तो डर है, रूप ! उसे, मेरी अस्मतको, हाथ न लगा सकनेका जो मतलब है, उसपर हजार बाज कुर्बान है । काश कि तुम हाथ लगाने देती किसीको, मेरी अस्मतको ही सही ।

रूप०—और देर न करो, मेरे मालिक । भागो, वरना रूप तुम्हारे सामने टेर हुई जाती है । भागो ।

बाज—[जाता हुआ] अच्छा । चला, रूपा, बाज तुम्हारा चला । माफ करना मुझे, रूप ! मेरी मगदिली माफ करना, मेरी बूज-दिली माफ करना । चला, विदा । अल्विदा ।

रूप०—जाओ, मेरे राजा, मेरे स्वामी, जाओ ! राहके तुम्हारे काँटे फूल हो जायें । रक्षा करना भवानी, मेरे राजाकी । महाकाल, तुम्हारा ही दिया है, कहीं छीन न लेता ।

[पिछले द्वारका खुलना । घोड़ेकी टापकी हल्की आवाज । रूपमती कुछ देर अँधेरेमे गढकी दीवारके पास खड़ी रहती है, ऊपर चढ़कर देखती है । अँधेरा है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता । बस घोड़ेकी टापकी हल्की आवाज सुन पड़ती है । धीरे-धीरे रूपमती बोलती है—]

रूप०—घोडा कितना भाग्यवान है, रूप कितनी अभागी ।

रूपमती दुखिया भई, बिना बहादुर बाज ।

श्व जिय तुम पर जात है, यहाँ कहाँ है काज ?

दृश्य ५

बाबिका—बाज चित्तौर चला गया । राणाने उसे शरण देकर अपना पत रखा । उधर माण्डूमे आदम खाने कहलाया कि अगर गढका द्वार न खुला तो गढ बासुदने उड़ा दिया जायेगा । रूपने गढकी रक्षाके लिए, प्रजाकी रक्षाके लिए, गढका द्वार खोल दिया । पर आदमको उनमे मन्तोष न हुआ ।

वस्त्र पहने, कीमतीसे कीमती जवाहरात । और पलगपर लेट आदम खाँका इन्तजार करने लगी । आधी रातका सन्नाटा जब गढ़पर छाया, पहलूए जब ऊँघने लगे तब आदम चुपचाप रूपमतीके महलो आया । बेलाने उसे रूपमतीका कमरा इशारेसे बता दिया । कमरेमे झाड चमक रहे थे ।

बाचिका—उनकी रोजनीमे आदमने देखा—रूपमती पलगपर पडी सो रही है, रात आधी चली जानेमे शायद उसकी पलके नीदसे बोलिल हो आई है । पर जो उसने पलगफा पर्दा उठाया तो चीखकर दो कदम पीछे हट गया । उसकी चीख सुनकर भी कोई पास न आया । वह था और वह लाश थी और उस लाशकी कहानी गढ़पर छाई थी, जो आज भी माण्डूके वीरानेको भर रही है ।

क्रौंच किसका ?

दृश्य ?

[राजा शुद्धोदनका महल । राजा, अनेक अभिजातशाक्य, अभिजात-पुत्रोंके आगे सिद्धार्थ शान्त खड़ा है, बायें कन्धेसे धनुष लटक रहा है, पीठपर बंधे तूणीरसे बाणोंके ककपत्र भाँक रहे हैं । कुमारके दाहिने हाथमें एक बाण है जिसका पख उसके कन्धेसे लगा है और उसका फलक वह नाखूनसे हल्के-हल्के रगड़ रहा है ।]

राजा—प्रसन्न हूँ, कुमार । तुम्हारे हस्तलाघवने आज तुम्हारे शत्रुओंका मुँह वन्द कर दिया ।

सिद्धार्थ—मेरा कोई शत्रु नहीं है, पिता ।

राजा—सही, कुमार, पर शका दूर हुई ।

सिद्धार्थ—शका कैसी, राजन् ?

राजा—कुछ लोगोंने तुम्हें बदनाम करनेका प्रयत्न किया था ।

सिद्धार्थ—वह क्या, राजन् ?

राजा—यही कि तुम प्रामाद-वैभवमें पलते हो, कि तुम निर्वीर्य हो, प्रमादी हो, कि प्रासादगत व्यमनोने तुम्हारे शस्त्र-कौशलको कुण्ठित कर दिया है । पर आज जो तुमने सारे शाक्य-किशोरोंको अपने लक्ष्य-वेधसे निस्तेज कर दिया है, उसमें वह निन्दा निर्मूल हो गई है । तुम कपिलवन्तुके एकवीर हो । प्रसन्न हूँ, कुमार ।

सिद्धार्थ—देवकी प्रसन्नतामें मत्त हुआ, पर निन्दा निर्मूल हुई, इससे कुछ विशेष आह्लाद नहीं होता ।

राजा—आह्लाद होना चाहिए, कुमार । क्षात्र-व्यवहारपर आक्षेप शाक्य-किशोरोंके लिए अचिन्त्य होना चाहिए । यशस्वी हो । लो अर्घ्य, निलक लो । पुनोवा ।

पुरोहित—अव्य-तिलक प्रसूत है, राजन् । कुमार ने ।

[कुमार स्थानने नहीं हिलता, निश्कल पड़ा है । पुगेतिग जब उनकी ओर अर्घ्य-तिलककी मामग्री लिधे गया है तो वह अचना मुँह उबर फेर लेता है । शाप्य तगरणो पीर वगामे फुमफुनाहट होने लगती है । राजा रुद रुष्ट हो जाता है ।]

राजा—क्या बात है, कुमार ?

मिद्वार्य—[नीचे निर किये] आजा, रेश

राजा—अर्ध-निष्कणे उदासीनता लगे उठे प्राण गाय-सिन्हा-नर
मन्त्रक होतो हे ।

मिथ्याः—यही गणन ।

राजा—फिर क्या था है ? परोसती यह जगमाणा है कि

विदूषाः—इह सा महि पति नामस्यत है, जगदीश्वर पति श्री, मया सा
पति श्री । पर जिन चौपडा पास्यामस्यत मत्त मया इह श्री
वता है उभय विद्या है ।

सत्यमेव जयते

निदृश्यं—अत्र-सामान्य, यथा । । नामात् प्रसक्तमत्र ।

गङ्गा—एतत् त्वं हि, कुमार ! भवतु त्वत्तु विद्या न हि मे ।

निर्दुःखार्थ—अथ तेषां तत्ता म विन्दत । अथ तै, यत्ता, तत्ता । ।
 अन्तर ता निर्विनाय तत्ता । तै, अथ यत्ता, तत्ता । ।
 अथ तै, तत्ता । ।

[१५०]

[illegible]

राजा—देवोपम थे वे राजपि, कुमार, उनकी बात छोड़ो ।

सिद्धार्थ—उनमे ब्रमाधारण कुछ नहीं मानता, देव, मनुष्यकी सेवा पूर्वापर नहीं मानती, उसका लाभ सबको है, उसकी कोई परिधि नहीं, राजन् ।

राजा—शस्त्र-कार्य शाक्य कुमारोको परम्परा कपिल मुनिके ही समयसे, प्रथम इक्ष्वाकुके कालसे ही, चली आती है, कुमार । वर्ण-व्यापार-से विरत न हो, सिद्धार्थ । शस्त्र-व्यापार शाक्य-कुमारके लिए वैसे ही सहज है जैसे पुरोधाका यज्ञमे पशु-मारण-कर्म ।

सिद्धार्थ—फले पशु-मारण-कर्म पुरोधाको, राजन् । पशु-मारण-कर्म मेरे लिए यज्ञ-अयज्ञ सर्वत्र गृहित है । और शाक्य-कुमारका सहज शस्त्र-व्यापार मैं तज चुका हूँ—मनसे, वचनसे, कर्मसे ।

पुरोहित—कठिन हो, कुमार ।

सिद्धार्थ—ब्रह्म, महर्षि । दारुण कर्मसे विरत हूँ ।

राजा—कुमार गरजते मिहोके विकराल फैले मुखोको तुमने बाणोसे भर दिया है ।

सिद्धार्थ—नहीं, राजन्, पर लक्ष्यकी मृगीने जब अपने कर्णयित नयनोको पसार मुझे देखा है तब आकर्ण खिंची धनुषकी मेरी प्रत्यक्षा नहना शिथिल हो गई है, मैं लौट पड़ा हूँ । और अमहाय मृगीका वह दीन अवलोकन अन्तरको सालता रहा है । ना राजन्, वह कर्म मुझसे न होगा ।

राजा—मृगीको न मारो, कुमार । मात्र हिन्न जन्तुओको अपने शरका लक्ष्य बनाओ । सहमत हूँ ।

सिद्धार्थ—मैं सहमत नहीं हूँ, गुरुवर । हिन्न-अहिन्न प्राणवानोकी सजा है, बाणहन निह और शरविद्ध मृगीमे मेरे लिए कोई अन्तर नहीं है । दोनों ही अपने मरणमे निस्पन्द है, अपनी पीडामे कातर ।
[लोगोमे फुत्तफुत्ताहट, हलचल]

पुरोहित—अव्यं-तिलक प्रस्तुत है, राजन् । कुमार लें ।

[कुमार स्थानमे नहीं हिलता, निश्चल खड़ा है । पुरोहित जब उसकी ओर अव्यं-तिलककी मामग्री लिये बढ़ता है तब वह अपना मुँह उधर फेर लेता है । शायद तरुणों और वृद्धोंमें फुमफुमाहट होने लगती है । राजा कुछ रुष्ट हो जाता है ।]

राजा—क्या बात है, कुमार ?

सिद्धार्थ—[नीचे मिर किये] आज्ञा, देव ?

राजा—अव्यं-तिलकसे उदानीनता क्यों ? उनके प्रति शायद-विशेष नत-मस्तक होने है ।

सिद्धार्थ—नहीं, राजन् ।

राजा—फिर बात क्या है ? पुरोवाकी यह अवमानना कैसी ?

सिद्धार्थ—देव, दोनोंके प्रति नतमस्तक हूँ, अव्यं-तिलकके प्रति भी, पुरोवाके प्रति भी । पर जिन कौशलके परिणामस्वरूप आज मेरा यह गौरव बना है उससे विरत हूँ ।

राजा—क्या ? शस्त्र-व्यापारसे ?

सिद्धार्थ—शस्त्र-व्यापारसे, राजन् । [लोगोकी फुमफुमाहट]

राजा—क्या कहते हो, कुमार । क्षात्र-धर्मकी निन्दा न करो ।

सिद्धार्थ—क्षात्र-धर्मकी न तो मैं निन्दा करता हूँ, राजन्, न स्तुति । परम्पराका निर्वाह मात्र करता हूँ । हाँ, उस परम्पराने नि मन्देह क्षात्रधर्मको तज दिया है ।

राजा—नहीं ममज्ञा, कुमार ।

[सड़े लोगोमें कुछ हलचल]

सिद्धार्थ—देवका सब जाना है, राजन् । मैं राजपियोकी वान कर रहा हूँ—पार्वकी, अश्वपति कैकेयकी, प्रवाहण जैवलिकी, अजानशत्रुकी, जनक विदेहकी । क्या उन्होंने शस्त्रकी धार कुण्ठन कर चिन्तन-की अपना इष्ट नहीं बनाया ? वह परम्परा मुझे मान्य है देव ।

राजा—देवोपम थे वे राजर्षि, कुमार, उनकी बात छोड़ो ।

सिद्धार्थ—उनमे अमाधारण कुछ नहीं मानता, देव, मनुष्यकी मेधा पूर्वापर नहीं मानती, उसका लाभ सबको है, उसकी कोई परिधि नहीं, राजन् ।

राजा—शस्त्र-कार्य शाक्य कुमारोको परम्परा कपिल मुनिके ही समयसे, प्रथम इक्ष्वाकुके कालसे ही, चली आती है, कुमार । वर्ण-व्यापार-से विरत न हो, सिद्धार्थ । शस्त्र-व्यापार शाक्य-कुमारके लिए वैसे ही सहज है जैसे पुरोधाका यज्ञमे पशु-मारण-कर्म ।

सिद्धार्थ—फले पशु-मारण-कर्म पुरोधाको, राजन् । पशु-मारण-कर्म मेरे लिए यज्ञ-अयज्ञ सर्वत्र गृहित है । और शाक्य-कुमारका सहज शस्त्र-व्यापार मैं तज चुका हूँ—मनसे, वचनसे, कर्मसे ।

पुरोहित—कठिन हो, कुमार ।

सिद्धार्थ—द्रव, महर्षि । दारुण कर्मसे विरत हूँ ।

राजा—कुमार गरजते सिंहोके विकराल फैले मुखोको तुमने बाणोसे भर दिया है ।

सिद्धार्थ—नहीं, राजन्, पर लक्ष्यकी मृगीने जब अपने कर्णायुत नयनोको पसार मुझे देखा है तब आकर्ण खिंची धनुषकी मेरी प्रत्यक्षा महसा शिथिल हो गई है, मैं लौट पड़ा हूँ । और असहाय मृगीका वह दीन अवलोकन अन्तरको सालता रहा है । ना राजन्, वह कर्म मुझमे न होगा ।

राजा—मृगीको न मारो, कुमार । मात्र हिंस्र जन्तुओको अपने शरका लक्ष्य बनाओ । सहमत हूँ ।

सिद्धार्थ—मैं सहमत नहीं हूँ, गुरुवर । हिंस्र-अहिंस्र प्राणवानोकी सजा है, बाणहन निह और शरविद्ध मृगीमे मेरे लिए कोई अन्तर नहीं है । दोनों ही अपने मरणमे निस्पन्द है, अपनी पीडामे कातर ।
[लोगोमे फुत्तफुत्ताहट, हलचल]

राजा—कठिन हो, कुमार ।

पुरोधा—नि मन्देह कठिन ।

सिद्धार्थ—मूलमे हिंन्त्र-अहिंन्त्रकी वेदना समान है, राजन, जैसे भस्मीभूत गमी और पलाशकी अग्निकी शीतलता समान है, पुरोधा । यह मेरा अन्तिम शस्त्र-व्यापार था । विरत होता हूँ शस्त्र-कर्ममे आजसे । आप सब साक्षी हो ।

[राजाका चुपचाप चला जाना, फुमफुसाहट, हलचल, शान्ति ।]

दृश्य २

[जामुनके पेड तले चिबुक हथेलीपर धरे सिद्धार्थ निस्पन्द बैठा है । पुष्करिणीमे प्रात कालीन मलयके स्पर्शसे हल्की लह-

जोड़े जलकी सतहपर सहसा तैर जाते हैं, पर सिद्धार्थके चिन्तन-व्यापारमें कोई अन्तर नहीं पडता । शान्त नीरव वह बैठा है ।]

सिद्धार्थ—[उठते हुए सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे जागता-सा] कितना नीरव है निसर्ग । कितना विपुल है इस निसर्गका वैभव । कितनी प्रशस्त है, अरुण, तुम्हारी यह सचरण भूमि, यह फैला आकाश, पर इसके चँदोवे तले रहनेवाला मानव कितना अकिंचन है, कितना करुण । जीवधारीका सकट कितना दारुण है । बालपनका प्रसन्न हास तारुण्यके उल्लासमे, उसकी असीम कामनाओमे बदल जाता है, उल्लास प्रौढताके चिन्ताकुल गर्तमे खो जाता है । जरा आती है और कमनीय काया जर्जर हो जाती है, फिर वही एक दिन निर्जीव भी हो जाती है । क्या होता है फिर उस प्रमन्न हामका, उल्लासका, उस जर्जर कायाका भी ?

[आमका फल टपक पडता है । टपकनेकी हल्की आवाज ।]

सिद्धार्थ—यह टपक पड़ा आम ! जैसे जर्जर काया टपक पड़ती है ।

आमका वह पका पीत गात ! जीवका पका-अधपका—तरुण—
वाल जीवन धागेसे बँधा टँगा है, दुर्बल धागेसे, और हल्की बयार
भी उसे झकझोरकर नष्ट कर देती है । [सूर्यकी ओर देखते हुए]
तुम लोक-लोक फिरते हो, अपनी काया दाहते, दूसरोको आलोक
अरुण गरमई बाँटते, भला ब्रह्माण्डके किसी और भागमे भी जीवको
तुमने इतना कातर इतना बेचारा पाया है ? पर स्वयं क्षितिजके
परे-नीचेसे तुम उठते हो, सुकान्त—अरुण, आकाशकी मूर्धापर
धीरे-धीरे चढ़ जाते हो, फिर निस्तेज हो चलते हो अपने अस्ता-
चलकी ओर, अपनी ही पराजयसे आरक्त ! क्या अन्तर है भला
दीन प्राणियोमे और तेजोमय तापराशि तुममे ?

[सहसा पुष्करिणीमे कुछ हलचल होती है, कुमार नीचे देखता
है, बड़ी मछली छोटीको मुँहमें दबाये उछल पड़ती है । कुमार
हिल उठता है ।]

सिद्धार्थ—वही ऊपरका ही प्रतिविम्ब इस जलमे भी ! मात्स्यन्यायका
दारुण व्यापार ! कौन प्राणियोकी रक्षा करेगा, इस सहारसे, इस
मारक हाससे ?

[हसोके जोड़ोका जामुनकी डालीपर किलोल]

सिद्धार्थ—सदासे करते आये हैं मनीषी । पर क्या कर पाये वे खोज
जीवन-व्याधिकी औषधिकी ? मैं करूँगा । [शब्दोपर जोर
देकर] मैं ! अकिञ्चन हूँ, उन मेवावियोकी तुलनामे । पर करूँगा
मैं खोज उस उपायकी जो दुःखका मूल काट सके, प्राणीका दुःख
मोच सके ।

[क्रॉच-मिथुनके किलोल शब्द]

सिद्धार्थ—कितनी धूप है इस घरापर, निमर्गमे कितनी शान्ति
है, प्राणीका प्राणीमे कितना मोह ! पर जितनी ही धूप है, उतनी

ही छाया, जितनी ही, गान्ति है, उतना ही कोलाहल, जितना मोह, उतनी ही घृणा ! ऐसा क्यों ? क्यों किमीका आह्लाद किमीका विपाद बन जाता है, किसीके उल्लसित प्राणोंको कोई क्यों सहमा हर लेता है ?

[क्रीचका कातर-करुण श्रांत स्वर ! सहसा आहत पक्षीका सिद्धार्थकी गोदमे गिरना । कुमार यकायक उछल पड़ता है ।]

सिद्धार्थ—आह ! [घायल पक्षीकी फड़फड़ाहट । सिद्धार्थ पक्षीके शरीरसे बाण निकालता हुआ उच्छ्वासके साथ—] मार डाला व्याधके बाणने ! [बाष्प गद्गदकण्ठ] क्या विगाडा था भला इम निरीह पक्षीने अधिकका ? [सहसा पहले उसकी छायाका फिर देवदत्तका प्रवेश । सुपुष्ट वाम स्कन्धसे लटकता धनुष, पीठपर बाणोंसे भरा तरकश, दाहिने करके बाणकी नोक धाँपित करती उँगलियाँ । वक्षका छोटा-सा पुष्पहार आखेटकी व्यस्ततासे धूमिल । कुमार घृणासे मुँह फेर लेता है ।]

देवदत्त—क्रीच मेरा है, कुमार !

सिद्धार्थ—[घृणासे दृष्टि उठाता हुआ] लुब्धक ! किरात !

देवदत्त—[हँसकर] कुलपति विश्वामित्रके अनुसार ये शब्द सम्य नहीं, कुमारके सर्वथा अयोग्य !

[कुमार फड़फड़ाते पक्षीके लहसने पख पुष्करिणीके जलमें धोता है । जलके छोटे उसके नेत्रोंपर डालता है, कुछ उसकी चंचुमें ।]

देवदत्त—[कुछ ऊँचे स्वरमें] कुमार, क्रीच मेरा है ! [सिद्धार्थ ललाटसे पसीनेकी नन्ही बूँदें पोछ लेता है ।]

देवदत्त—[उच्चतर स्वरमें] क्रीच मेरा है, कुमार !

सिद्धार्थ—[फड़कते होठोंसे] मृत क्रीच तेरा, जीवित मेरा !

[क्रौंचके रक्तसे रंगे अपने नाखून धोता है । एक उंगलीसे हंसका घाव हल्के दबाये हुए हैं ।]

देवदत्त—[सिद्धार्थकी शान्त चेष्टासे जल-भुनकर उच्च स्वरसे] कुमार ।

सिद्धार्थ—[सवेग दृष्टि फेरता है] बोल ।

देवदत्त—[क्रोधसे काँपते स्वरसे] दे दो मेरा क्रौंच ।

सिद्धार्थ—[अविभूत उपहासास्पद वाणीसे] यमसे माँग अपना क्रौंच, देवदत्त ।

देवदत्त—ले लूँगा, कुमार, अपना क्रौंच ले लूँगा ।

सिद्धार्थ—ले ले, यदि शक्ति है ।

[कुमारका तनकर खड़ा होना, देवदत्तका सवेग आगे बढ़ना । सहसा केलोकी वाढसे निकलकर रक्षकोका देवदत्तको पकड़ लेना ।]

पहला रक्षक—सावधान, देवदत्त ।

देवदत्त—छोड़ दो मुझे । कौन हो तुम ?

रक्षक—राजाजासे हम सदा कुमारकी अलक्षित रक्षा करते हैं ।

देवदत्त—छोड़ दो मुझे, हट जाओ ।

सिद्धार्थ—छोड़ दो न, तनिक देखूँ इसका बाहुबल । क्रौंच समझ रखा है इसने मुझे भी ।

देवदत्त—हाँ, छोड़ दो मुझे, दिखा देता हूँ अभी क्रौंच किसका है ।

दूसरा रक्षक—अब इसका निर्णय सथागारमे होगा, राजा करेंगे । चलो ।

[सब सथागारकी ओर जाते हैं । देवदत्त रक्षकोसे घिरा, कुमार पक्षीको दोनों हाथोंसे पकड़े, छातीसे सटाये हुए । सभी चुप ।]

दृश्य २

[शाक्योका सथागार । राजा, उपराजा, पुरोधा आदि बैठे हैं । सथागारमे इस समय न्यायालयके इन अधिकारियोंके अतिरिक्त केवल वादी-प्रतिवादी हैं जिनके मुकदमे सुने जा रहे हैं । प्रधान रक्षकने देवदत्त और सिद्धार्थके साथ आकर स्थिति निवेदन की । राजाने दोनोंको आत्मनिवेदन करनेको कहा ।]

देवदत्त—राजन्, सिद्धार्थ गौतमने मेरे आखेटका लक्ष्य बलपूर्वक अपहृत कर लिया है ।

राजा—सो कैसे ? स्पष्ट विस्तारपूर्वक कहो ।

देवदत्त—देव, नित्यकी भाँति आज भी शाक्य-नियमोंके अनुसार आखेट-व्यायामके लिए वनान्तकी ओर चला गया था । देर तक दौड़-भाग करनेपर भी जब कोई शिकार न मिला तब मन मारे लौट रहा था कि नगरके पूर्वद्वारकी पुष्करिणीके तीर जामुनके वृक्ष-पर क्रौंच मिथुनको देखा । बाण जो सधानकर मारा तो वह क्रौंच-नरके जा लगा और वह तत्काल आहत हो नीचे गिरा । नीचे सिद्धार्थ गौतम सदाकी भाँति आज भी जामुनकी छायामें बैठा था । क्रौंच उसकी गोदमें जा गिरा । जब मैंने पहुँचकर अपना शिकार माँगा तब उसने उसे देनेसे इन्कार किया और द्वन्द्व युद्धके लिए तत्पर हो गया । मुझे मेरा शिकार मिलना चाहिए ।

राजा—रक्षक, तुम क्या वही थे ?

रक्षक—देव, मैं वही था । मेरे साथ बालाहक और बधिर भी थे ।

राजा—उन्हे भी उपस्थित करो ।

[प्रधान रक्षकका बालाहक और बधिरके साथ प्रवेश । राजाज्ञा उनके सामने देवदत्त अपना वक्तव्य दुहराता है ।]

राजा—[प्रधान रक्षकसे] देवदत्तका वक्तव्य क्या सच है ?

प्रधान रक्षक—देव, सच है, सिवा इसके कि सिद्धार्थ गौतमपर आक्रमण-
का उपक्रम पहले देवदत्तने ही किया ।

[राजाके पूछनेपर अन्य रक्षक भी इसकी पुष्टि करते हैं ।]

राजा—सिद्धार्थ गौतमपर आक्रमणका उपक्रम जब पहले तुमने किया,
देवदत्त, तब आवेदनका अर्थ क्या रहा ?

देवदत्त—आक्रमण हुआ नहीं, देव । फिर आखेटके लक्ष्यका न्याय तो होना
ही है ।

राजा—तो तो होगा ही, पर व्यवहारका तिरस्कार तो उचित नहीं ।

देवदत्त—[सिर झुका लेता है, फिर अपने-आप धीरे-धीरे कहता है—]
पितृव्य द्वारा न्याय कहाँ तक सम्भव है, विशेषकर जब प्रतिवादी
पुत्र हो ।

राजा—सिद्धार्थ गौतम, देवदत्तका आवेदन कहाँ तक सच है ?

सिद्धार्थ—प्रायः नमूचा ही सच है, राजन् ।

राजा—नमूचा ही सच है ?

सिद्धार्थ—प्रायः समूचा ही, हाँ, देव ।

राजा—फिर तुम्हारा कुछ प्रतिवाद नहीं ?

सिद्धार्थ—है, राजन्, प्रतिवाद है ।

राजा—बोलो, क्या है ?

सिद्धार्थ—देवदत्तने क्रौंचको शरविद्ध किया । वह धरतीपर नहीं गिरा,
मेरी गोदमे गिरा । रक्त और अशौचसे अपना गात अपवित्र
करनेका आवेदन नहीं करता, राजन्, पर प्रश्न एक निश्चय निवे-
दन कम्पेगा—क्रौंच मृत नहीं जीवित गिरा, मरणासन्न । मैंने उसे
जलादिके उपचारसे सम्हाला । क्रौंच किसका है ?

राजा—उने मारा किमने ?

देवदत्त—मैंने ।

सिद्धार्थ—जिलाया मैंने । और मैं पूछता हूँ—कौच मारनेवालेका या जिलानेवालेका ?

राजा—ऐं ।

[राजा चकित हो जाता है, उत्तर नहीं दे पाता, अपने चारों ओर न्यायके पण्डितोंकी ओर लाचार देखता है । धर्मसूत्रोंमें उसका विधान नहीं । सब चुप हैं ।]

राजा—[पण्डितोंसे] कौच मारनेवालेका या जिलानेवालेका ? [पण्डित चुप हैं]

राजा—देवदत्त, परम्पराके व्यवहारमें कौच तुम्हारा है, पर सिद्धार्थ गौतमने जो प्रश्न उठाया है वह भी कुछ कम महत्त्वका नहीं । मैं लज्जित हूँ, कुछ निर्णय नहीं दे सकता ।

[देवदत्त भुनभुनाता हुआ चला जाता है, सिद्धार्थ छातीसे कौच-को चिपकाये सयागारसे बाहर हो जाता है । राजा धीरे-धीरे दुहराता है—‘कौच मारनेवालेका या जिलानेवालेका ?’ धीरे-धीरे सभी पण्डितोंके मुँहसे उसी प्रश्नकी प्रतिध्वनि उठती है ।]

[पटाक्षेप]

जोहान वोल्फगांग गेटे

दाचक—बाईस वर्षका गेटे । जिस्म फौलादी । साँचेमे ढला हुआ । ऊँचा कद, अत्यन्त सुन्दर । मधुर रोमानी कवि । उसके लिरिकोकी प्रशंसा लेमिंगके-से कठिन आलोचको तकने की है । भावुकता और रोमासको अमित सम्पदा उसकी कवितामे है । उस कविताने कुमारियो और विवाहिताओके हियेमे टीम उठा दी है । पर स्वयं वह किसी एकके प्रति चिरकालिक स्नेह नहीं रख पाता । कानूनके अध्ययनके लिए वह स्ट्रामबुर्ग आया है । फ्रांकफुर्ट और लाइपजिग-में तरुणियोके अनुरागपर वह शान्त कर चुका है । वही अब स्ट्रामबुर्गमे है । स्ट्रामबुर्ग प्रकृतिका रनिवास है, सम्मोहक सकेत-गृह । पहाडोकी वर्षा ढुलक चुकी है । वसन्त यौवनपर है, पराग वरन रहा है । चारो ओरकी पहाडियाँ फूलोसे लदी है । वही वामन्ती लतिकाओके बीच, गेटे और मिनी—

गेटे—कितना मधुर रहा होगा वह कवि, मिनी, सोचो जरा ।

मिनी—तुम जितना शायद नहीं, जोहान ।

गेटे—नहीं, मिनी । ये पूरवके कवि, वैसे भी भावराशिके स्रष्टा है पर रस और ध्वनि तो जैसे उनकी अपनी है । और जब प्रकृति भी उनसे नहकार करती है तब तो जैसे उनकी लेखनीमे जादू बस जाता है । फिर इस कालिदामको तो कही समता ही नहीं ।

मिनी—पर तुम तो कहते थे न कि पूरवके कवि भावबोझिल है, अध्यात्म-प्रवीण ?

गेटे—नहीं, पर भाव और आत्मबोध जीवनके साथ वे अजब रीतिसे पिरो देते हैं । फिर अध्यात्मसे अलग भी उनका असीम काव्य है जो निरे जीवनमे सम्बन्ध रखता है । उद्दाम जीवनसे, उसकी उम्र आँधीने जिनमे जीवन स्वयं जडतक हिल जाता है । और उमी

आँधीको उनका सुकुमार काव्यतन्तु, प्रणयका पतला धागा, बाँध-कर बेवम कर देता है । अनुरागका वह कवि रति-विरतिके मैदानमें जैसे रतन बिखेर देता है, मारी प्रतिभाएँ फिर उसमें अपना डग, अपना भाग, खोज लेती हैं ।

मिनी—जोहान, मुझे अपने स्वरमें वञ्चित न करो, उस मधुर स्वरमें, जो मेरे सुनेका सर्वस्व है । मुनाओ अपनी वह कम्पना जिमकी भीमाएँ तुम्हारे शब्द ही छू सकते हैं ।

गटे—अच्छा सुनो, मिनी, कविकी वाणी सुनो । अर्थको न सोचो । तुमने स्वर मागा है, सुनो, और जानो कि इसमें मधुर इस धरापर और कुछ नहीं—

सरसिजमनुविद्य शैवलेनापि रम्य

मलिनमपि हिमाशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम् ॥

मिनी—यही शकुन्तला है, गटे ?

गटे—यही, मिनी । शकुन्तला यही है । और माँगो अपने कविसे यह छवि । दे सकेगा भला ? उसकी सारी काव्यसम्पदा इसके मामले में तुच्छ है ।

मिनी—मच जोहान, शैवलमें उलझा कमल, धब्बेसे मलिन चाँद, वल्कलमें लिपटी शकुन्तला—तीनों अभिराम हैं, अपने दोषोंसे ही सुन्दरतर ।

[नौकरका प्रवेश]

नौकर—हर्डरकी सेक्रेटरी पधार रही है ।

गटे—बिठाओ । कहो मैं तैयार हूँ, अभी चलूँगा । [मिनीसे] मिनी, जानती हो, आज लेसिंगसे मिलना है । इसीसे हर्डरने सेक्रेटरी भेजा है । जाता हूँ, क्षमा । अल्विदा !

मिनी—जानती हूँ, प्रिय ! नहीं रोकूंगी, जाओ । अल्विदा !

[प्रस्थान]

वाचक—युग बुद्धिवादी है । जीवनके हर पहलूको तर्ककी कसौटीपर कसा जा रहा है और उस तर्कका मध्य बिन्दु है लेसिंग । लेसिंग रूपांतिकी चोटीपर है ।

[हर्डर नये युगका प्रवर्तक है, 'स्टूर्म उण्ड ड्राग'—तूफान और ताकतके युगका । उसके प्रधान सहायक गेटे और शिलर होने वाले हैं, तरुण गेटे, तरुण शिलर । हर्डर बुद्धिवादको जीवनपर अत्याचार मानता है । रोमैटिक परम्पराका वह पिता है । गेटेसे केवल पाँच वर्ष बड़ा, पर उसका सिद्धान्त-गुरु ।

वही लताओकी आडमे होटलके वरामदे लेसिंग और हर्डर बैठे हैं । वहस छिड़ी है । बीच-बीचमे दोनों हलकी हालाकी चुस्कियाँ ले लेते हैं । गेटेका इन्तज़ार है ।]

हर्डर—ना, लेसिंग, साहित्य तत्त्वबोध नहीं, शिराओका कपन है, मधुर-मादक भावोंका ऊहापोह, आमूल हिला देनेवाली स्वप्निल व्यजना-का मूर्तन, रति-विरतिका गुम्फन ।

[वेयररका प्रवेश]

वेयरर—जोहान वोल्फगांग गेटे ।

[गेटेका प्रवेश; लेसिंग और हर्डरका स्वागतके लिए उठना]

हर्डर—लेसिंग [एक साथ]—स्वागत ! स्वागत !

गेटे—अनुगृहीत हुआ ।

हर्डर—लेसिंग, जर्मनीकी अभिनव भारतीके अनुपम सर्जक तरुण गेटेको तुम्हारे समीप उपस्थित करके अभितृप्त होता हूँ । 'स्टूर्म उण्ड ड्राग' की तुम मुझे आद्याशक्ति कहते हो, कहो अगर चाहो, पर उसका वास्तविक केन्द्र आज तुम्हारे सामने है यह गेटे ।

[हर्डरके स्वरमें उत्साहसूचक कम्पन]

लेसिंग—गेटे, मानता हूँ तुम्हारी काव्यशक्ति । जर्मनीका माहित्य तुममें भरेपूरेगा इसमें सन्देह नहीं । स्वागत ।

गेटे—अनुगृहीत हुआ । महामहिम लेसिंगको सत्कामना मेरे मार्गको नि गूल करेगी, धन्यवाद । पर हर्डरका मेरे प्रति पक्षपात आपमें सम्भवन छिपा नहीं । [फिर हर्डरसे] और हर्डर, आभार, धन्यवाद ।

लेसिंग—जानता हूँ, गेटे, हर्डरका तुम्हारे प्रति आकर्षण । पर यह भी जानता हूँ कि वह आकर्षण अकारण नहीं है । फिर तुम उस विप्लवके केंद्र होने जा रहे हो, हर्डर जिनका आदि बिन्दु है । स्वयं मैं यद्यपि उस दृष्टिकोणको स्वीकार न कर सका, पर, तुम्हारी कलमका जादू स्वीकार करता हूँ और वह हर्डरकी मिफारिशमें नहीं । [वेयररसे] वेयरर, ग्लास । [गेटेसे] गेटे, मच, तुम अपनी जमीनपर खड़े हो ?

गेटे—सम्मानित हुआ, लेसिंग । पर शायद मैंने आकर भाव-शृङ्खला तोड़ दी ।

लेसिंग—नहीं, नहीं गेटे । तुम्हारे ही लिए तो आज हम बैठे हैं । और शृङ्खला जो टूटी तो वह जुड़ भी जायगी । क्यों हर्डर ?

डॉ०—निश्चय । और मेरा विश्वास है, हमारा तरुण कवि हमारे विचारोंसे ऊबेगा नहीं ।

—नहीं हर्डर ।

तो तुम तर्ककी नित्य सत्ता स्वीकार नहीं करके, तुम जो विज्ञानका जादू देख रहे हो, स्वयं उसके प्रमुख हिमायतियोंमेंसे हो ।

र—सही, लेसिंग, मैं विज्ञानकी सत्ता स्वीकार करता हूँ । उसके प्रसारके हिमायतियोंमें भी हूँ । पर मैं बुद्धिवादी अविकसित शाश्वत सद्धि-सत्ताको नहीं मानता ।

लेसिंग—फिर क्या मानते हो ?

हर्डर—मानता हूँ कि बुद्धि जीवनसे पृथक् नहीं है, उसकी व्यवस्था-पिका है।

लेसिंग—यानी कि तुम उसे जीवनकी व्यवस्थापिका मानते हो ? फिर विरोध कहाँ है ? बुद्धि यदि व्यवस्थापिका है, जीवनकी सचालिका है तो क्या उसकी रग-रगमे समाहित नहीं ?

हर्डर—बम, यही तो विरोध आता है। बुद्धि व्यवस्थाकी परिचायक है, उसकी नजक, स्वयं व्यवस्था। पर जीवनसे सम्पर्कमें व्यवस्था उसकी करवटका एक बल मात्र है। उसके शरीरका रूप मात्र। रूपसे जीवनका बोध हो सकता है पर रूप जीवन नहीं है, उसका नवोद्यक आभास मात्र है।

गेटे—मैं देखल दे सकता हूँ ?

लेसिंग—[बोलता-बोलता] ओ बोलो, बोलो।

गेटे—क्षमा करेंगे, बात कट गई, बात पूरी करले।

लेसिंग—नहीं, नहीं, बोलो तुम। मेरी बात लम्बी है, फिर हो लेगी। पहले तुम कहो अपनी बात।

गेटे—मैं हर्डरसे पूछ रहा था कि फिर बुद्धि जीवनमें कहाँ आती है—क्या जीवनको सम्हालनेमें नहीं ?

हर्डर—ठीक, बुद्धि जीवनकी सम्हालमें ही आती है। उसे सम्हाल रखने, व्यवस्थित रखनेमें ही बुद्धिकी सार्थकता है। पर व्यवस्था स्वयं, जैसा कह चुका हूँ, जीवन नहीं।

गेटे—जर्मनीके धार्मिक युद्धोंमें क्या जीवन नहीं रहा है ? जीवनने ही तो जीवनका अन्त किया है ?

हर्डर—सही, धार्मिक युद्धोंकी बर्बरता अनुपमेय है पर जीवनकी उपासनासे उनका क्या भवन्व ?

लेसिंग—यह कि तर्क सम्मत जीवनका अभाव ही उसका कारण है। बुद्धिवादी अपने तक, प्रोटेस्टेंट या रोमन कैथोलिक, विश्वास

करता है और स्वयं वह अपना दृष्टिकोण स्वीकार करता है, विपक्षीको भी अपनी बुद्धि द्वारा अनुमोदित दृष्टिकोण कायम रखनेका विरोध नहीं करता। इस बुद्धि-व्यवस्थामें धार्मिक सहिष्णुता आती है, वरना, देखो, आल्सेम और पोलैंड तकके उजड़े गाँव और विध्वस्त नगर।

हर्डर—मैं कब कहता हूँ कि तर्क-सम्मत जीवनमें मेरा विरोध है? मैं सहिष्णुताके युग और उसकी अमूल्य देन शान्ति और स्वतन्त्रताको स्वीकार करता हूँ। इससे विशेषकर मनुष्य हूँ कि उसकी स्थापना में लेसिंगका सक्रिय योग रहा है।

लेसिंग—क्या उन्हें स्पष्ट करोगे?

हर्डर—निश्चय। लेसिंगका बुद्धिवाद विश्वको स्थिर यन्त्रके रूपमें देखता है जिसकी व्यवस्था तर्क-सम्मत विद्वानोंसे होती है। मैं विश्वको जीवित चंचल शरीर परिवर्तनशील शरीरके रूपमें पाता हूँ जो निरन्तर बढ़ता और नष्ट होता रहता है। हमारे पैरों तलेकी यह धरती स्वयं सतत गतिमती है, क्षण-क्षण कण-कण बदलती है। इसी प्रकार जो कुछ इस पृथ्वीसे प्रभूत होनेवाला है—जलवायुमें लेकर भाषा, रस्मोरिवाज, मजहब तक—वह सभी पृथ्वीकी ही भाँति बराबर बदलता जा रहा है। नित्य कुछ भी नहीं, नित्य वस एक चीज़ है, जीवन, प्रवहशील जीवन, निरन्तर बदलता, पर अपनी अटूट शृंखलामें सदा नित्य, उद्दाम। बुद्धिवादके कमजोर धागोंमें उसे बाँधनेका प्रयत्न न करो, लेसिंग।

१। —नहीं, हर्डर, नहीं करूँगा। अच्छा चला मैं, समय हो गया। युनिवर्सिटीकी गोष्ठी अब आरम्भ होनेवाली है। आज हमारी बात वस यही तक। और गेटे, मुझे जाना ही पड़ रहा है, खेद है। तुमसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्डर भाग्यवान् है जिसे तुम-सा समर्थ सहायक मिला। 'स्टूर्म उंड ड्राग' का भविष्य मेरे

बावजूद आलोकमय है, आलोकमय हो । क्षमा करना, गेटे, क्षमा
हर्डर [उठते हुए ।]

गेटे—ठीक है, ठीक है ।

हर्डर—मैं भी लेसिंगकी मिफारिश करता हूँ, गेटे । युनिवर्सिटीकी गोष्ठी
इनकी राह देख रही होगी ।

गेटे—ठीक है, ठीक है । निश्चय पधारेंगे । हम फिर आयेंगे । दर्शन कर
अनुगृहीत हुआ ।

लेसिंग—[हैट और छड़ी उठाते हुए] और देखना, हर्डर, अभी जाओ
नहीं । ग्लाम खाली करके जाना । जल्दी क्या है ?

हर्डर—अच्छा, अच्छा । धन्यवाद ।

[दोनों लेसिंगसे हाथ मिलाते हैं । लेसिंग जाता है]

लेसिंग—[जाते-जाते दूरसे आती आवाज़] हर्डर मुबारक तुम्हें उद्दाम
जीवन । गेटे, उन्मद जीवन मुबारक ।

[प्रस्थान]

हर्डर, गेटे—धन्यवाद । धन्यवाद ।

हर्डर—[धीरे-धीरे बैठते हुए] गेटे, यही लेसिंग है । युग-पुरुष, इस
युगका प्रवर्तक । धन्य है हम, उसके समकालीन ।

गेटे—[बैठकर] नहीं । इस यूरोपीय युगका उन्नायक लेसिंग ही है ।
पर एक बात बताओ, हर्डर । लेसिंग कुछ अप्रतिभ नहीं था ?

हर्डर—ऐसी गलती न करना, गेटे । मुझमें दम कहाँ जो उसे अप्रतिभ
कर सकूँ । सम्भवतः तुम नवागन्तुकके कारण उसने अपना गत्य-
वरोध जान-बूझकर किया । वरना उसका वाग्विलास, उसका
तर्क-वितन्वन । कहाँ लेसिंग, कहाँ मैं ।

गेटे—तुम दोनों महान् हो, हर्डर, तुम भी, लेसिंग भी । मैं तो दोनोंका
मुँह ताकता रह जाता हूँ ।

हर्डर—मुनो, गेटे, लेमिंगका तर्क बड़ा, मेरा शायद, जीवनका उल्लास
बड़ा है। पर तुम्हारे पास हृदय है, दोनोंमें बड़ा। हम दोनों को
जायेंगे, तुम युगोकी जिह्वापर विराजोगे।

गेटे—नही, मेरे अजेय गुरु। दीक्षा दो मुझे।

हर्डर—गेटे, ढोंग न करो। पर यदि मुझे तुम्हें किमी ओर आकृष्ट करना
है तो वम, इस ओर—राष्ट्रोंके लोकगीतोंका मौन्दर्य चैनो।
प्रकृतिकी ओर लौटो, मौलिकताको पेवन्द न लगाओ, प्रतिभापर
कोई प्रतिबन्ध न मानो, क्योंकि सर्जकका व्यक्तित्व अपना कानून
आप है। स्वच्छन्द गाओ, तुम्हारे लिरिकोमें उद्दाम जीवन लहरें
मारता है, उल्लास सस्वर है। भला कौन भूल सकता है तुम्हारे
'हाइदेनरोजलाइन' की बेकाबू कर देनेवाली बेवम पुकार।

गेटे—आभार, आभार हर्डर ! कितने उदार हो !

हर्डर—और देखो, गेक्सपियर, होमर, ओमियन, गोल्डस्मिथको न भूलना,
याद रखो—गेक्सपियर, होमर, ओमियन, गोल्डस्मिथ।

गेटे—[जैसे मुग्ध दुहराता हो] गेक्सपियर, होमर, ओमियन,
गोल्डस्मिथ।

[दोनों साथ-साथ उठते हैं, धीरे-धीरे होटलसे बाहर निकल
जाते हैं। हाथ मिलाकर विदा होते हैं।]

हर्डर—विदा, गेटे। फिर मिलेंगे।

गेटे—विदा। फिर मिलेंगे।

वाचक—डैन्यूवका एक कोण। वामन्ती प्रकृतिका अभिनव शृङ्गार। छिटकी
चाँदनी, तैरता चाँद। वरसते मकरन्दकी सर्वत्र उठती मादक
सुरभि। स्वासवुर्गके पासका गाँव, द्रुसेनहाइम और उमीके बाहर
नदीके इस कोणमें फूलो लदे निकुञ्जके बाहर मखमली घासपर
दोनों, फ्रेड्रिका और गेटे।

[हल्के सगीतका स्वर]

फ्रेड्रिका—आओ, वसन्तके गायक, सुना दो अपना भुवन-मोहन राग ।

गेटे—फ्रेड्रिके, मेरी एकान्त सुरभि, वम बोलती जाओ । मधु घोलती चलो । तुम्हारे आलापका सम्मोहन मानव कविके परे है । उसकी रागपरिधिके परे ।

फ्रेड्रिका—देखो, जोहान, रोम-रोम खुल पडा है, उसे निराश न करो, हृत्कमल आमूल खुल गया है, उसे सम्पुट न होने दो ।

गेटे—अच्छा, रानी । क्या सुनोगी ?

फ्रेड्रिका—वही, पिछली कविता, जिसे कहते हो, मुझपर लिखा है, जिसे हर्डरने सराहा है—‘याचना’ ।

गेटे—अच्छा सुनो । [पहले हल्की गुनगुनाहट, फिर स्पष्ट स्वर]

मैं युग-युगका अनुराग लिये आया हूँ,
मधु ऋतुका अखिल पराग लिये आया हूँ,
तुम अपना सचित यौवन आज लुटा दो,
मैं मूक विरहकी आग लिये आया हूँ ।

मैं युग-युग० ॥

वह कान शरासन तान चला मुसकाया,
घरतीके तनपर यह अम्बरकी छाया,
उन आसोंमे वह मंदिर कोकिला कूकी,
मैं मधुवनसे मधुराग लिये आया हूँ ।

मैं युग-युग० ॥

खोलो, मानिनि, अपने अरुणाघर खोलो,
इन रागवधिर कानोमे तुम रस धोलो,
फिर कण-कणमे उन्माद सजग हो आये,
मैं दस प्रणयका राग लिये आया हूँ ।

मैं युग-युग० ॥

तुम बीच-बिचुम्बित तीर खड़ी गुजारो,
 अपने श्यामल नयनोंका सिधु उधागो,
 फिर मुक्तकण्ठसे भाव-मुरलिका टेरो,
 मे अरमानोंका बाग लिये आया हूँ ।
 मे युग-युगका अनुराग लिये आया हूँ ॥

[गूँजती लौटती-सी आवाज सूनेपनको भरती-सी]

वाचक—दोनों चुप हैं । सुननेवाला भी, सुनाने वाला भी । फ्रेड्रिका गेटेकी ओर देख रही है । गेटे आकाशकी ओर । गेटे जब फ्रेड्रिकाकी ओर देखता है, आँखें चार होती हैं । पर फ्रेड्रिका चुप है । कवि मुसकराता है पर प्रेयसी निरुत्तर आसमान देखने लगती है ।

गेटे—फ्रेडा, चुप क्यों हो, प्राण ?

[कोई उत्तर नहीं]

गेटे—रानी ।

फ्रेड्रिका—[उच्छ्वास छोड़ती हुई] जोहान, तुम मानव नहीं हो ।

[आवाज भर्रायी हुई है, कुछ भारी-भारी]

गेटे—फिर कौन हूँ, फ्रेडा ?

फ्रेड्रिका—उन्हीमेसे कोई जिनके नाम लिया करते हो—होमर, ओसियन, उनके देवता, स्वर्गके गायक, शायद शेक्सपियरकी कल्पनाके कोई अभिराम नटवर ।

गेटे—[हल्का हँसता हुआ] क्या ?

फ्रेड्रिका—नहीं, होमर और ओसियनका संसार सूना है कवि, वर्जिल-होरेसका भी, शेक्सपियरका भी । नहीं पा रही हूँ वह नाम, प्रियवर, जिससे सबोवन कस्टें, जिममे तुम्हारे रागका सारा उन्माद समा जाये ।

गेटे—कहाँ विचर रही हो, रानी, किधर भटक पड़ी हो ?

फ्रेड्रिका—सुनो, गेटे ! सुनो, भला कौन है वह भारतीय कवि-नाट्यकार जिसकी सुकुमार छवि वह गकुन्तला है ?

गेटे—कालिदास, कालिदास !

फ्रेड्रिका—कालिदास, और उसका वह नायक ?

गेटे—दुष्यन्त !

फ्रेड्रिका—आह ! वस-वस ! दुष्यन्त ! तुम दुष्यन्त हो, मेरे अभिराम गायक ! पर अरे रे रे !

[बेहोश हो जाती है ।]

गेटे—[उद्विग्न होकर] क्या है, फ्रेड्रिका ? क्यों क्यों ? यह क्या ? अरे क्या हो गया ? क्या बात है प्राण ?

फ्रेड्रिका—कुछ नहीं, कुछ नहीं, मेरे राजा ! क्षणभरको उस मायावीकी याद आ गई थी । कहाँ हूँ, जोहान ?

गेटे—यहाँ मेरे अकमे, सुमुखि ! उस मायावी दुष्यन्तसे दूर ! द्रुसेनहाइम-को इस मकरदलदी उपत्यकामे । इस वासन्ती उपवनमे हम तुम दोनों अकेले ।

फ्रेड्रिका—और मेरे प्रिय, तुम उस मायावीका-सा आचरण तो न करोगे ?

गेटे—दूर पगलो ! मैं तुम्हारा एकान्त अनुचर सदा तुम्हारा रहूँगा । सदा इसी आश्रमकी उपत्यकामे ।

फ्रेड्रिका—नहीं, जोहान, उस स्थलकी याद फिर न दिलाओ । रोगटे खड़े हो जाते हैं । आश्रमकी बात याद आते डर हो आता है ।

गेटे—डरो मत, रानी ! घबटाओ नहीं । मैं सर्वथा तुम्हारा हूँ, सदा । चलो, घर चले ।

फ्रेड्रिका—चलो । पर मन जाने कैसा हो गया । भला होता जो उस नाट्यकी याद न आयी होती । कविता सुनकर ही क्यों न चुप

रह गयी । क्या कुछ गुनने लगी । और वह मायावी याद
आ गया ।

गेटे—अच्छा सुनो, मन ठीक हो जायगा ।

[गुनगुनाता । फिर स्पष्ट गायन, बाजेका हल्का स्वर]

गगन-पथ पर चाँद चढता जा रहा है,
भाव अन्तरमे उमडता आ रहा है,
मौन मनसे राग कढता आ रहा है,
प्रणयका उन्माद बढता जा रहा है ।

गगन-पथ पर० ।

नील अम्बर कानमे कुछ गुनगुनाता ,
मौज मे दक्खिन पवन अभिराम गाता ,
एक पंछी रात सुने मौन सन्तन
नीडको बेचैन उड़ता जा रहा है ।

गगन-पथ पर० ।

नीड मेरा भी, मगर रोता, अकेला ,
मैं वसेराहीन राही क्लान्त तन-मन ,
भाग अपना मांगता हूँ आतिथेयी ,
और वरवस अश्रु भरता जा रहा है ।

गगन-पथ पर० ।

पर अरे यह खिन्न मन कम्पित कलेवर ,
तुम जरा अपने सम्हालो कोप-तेवर ,
और अपना अशरासन, देखता हूँ ,
तीर तरकशसे कढा जो आ रहा है ।

गगन-पथ पर० ।

पर भला यह रूप क्या मृगप्याप्त होगा ?
या किनीके प्यारका उपहास होगा ?

मौन तोड़ो आज बोलो शीघ्र वरना
यातनाका मान बढ़ता जा रहा है ।

गगन-पथ पर० ।

[दूर हटती इन्हीं पक्तियोंको दुहराती आवाज]

वाचक—गेटे वेज़लरमे है । अपने जीवनका नितान्त भावुक काल वहाँ बिता रहा है । समारको वह यथावत् नहीं ले पाता । उसे वह अपनी मन स्थितिके अनुकूल, मौसिमके अनुकूल, कभी तो नरक-सा भयानक देखता है कभी स्वर्ग-सा काम्य । कोई पेशा उसे पसन्द नहीं, कोई चीज नहीं जो उसे बाँध सके । प्रोमेथियस लिखता अनियन्त्रित प्रोमेथियम बन जाता है । उसे आज़ादी चाहिए, उन्माद । वनन्तमे वह आनन्दके आँसू बहाता है, होमरकी पक्तियाँ ही उसे आश्वस्त कर पाती हैं । बाल-नृत्यमे वह लोती बूथसे मिलता है । फिर तो उसकी भावुकता सारे प्रतिबन्ध तोड़ वह चलती है । उसकी प्रेयमी दूसरेकी वाग्दत्ता है पर वह उस बातकी परवाह नहीं करता । वेज़लरमे जब गर्मियाँ आती हैं काम अपना शरासन कानो तक खींच लेता है । जन-जन मगन होता है, मन-मन विभोर । नदियोंका कलकल बरबस अपनी ओर खींचता है । फूलोके सौरभसे लदा पवन अनजाने पैठ मनको गुदगुदाता है । ऐसी ही गर्मियोंमे सफेदोकी डोलती छायामे वही सुकुमार लोती, वह मंदिर गेटे—

लोती—मेरे नलौने जादूगर, तूने जो अपनी छड़ी घुमा दी है, अन्तरङ्ग बेवस हो गया है । अब सम्हाल ।

गेटे—मैं क्या सम्हालूँ लोती ? मेरा तो रोम-रोम स्वयं उस पीडाका शिकार है जिसे न झेलते बनता है, न छोड़ते । ऐसा नहीं कि नारी मैंने

जानी न हो लोती, पर अवकी जैसे उमका पागल कर देनेवाला
प्यार नम-नममे पैठ गया है, भिन रहा है ।

लोती—[हँसकर] पहचानो, मेरे मधुर मित्र ! मचमुच क्या उम अन्तरमे मैं
हो हूँ या कोई और है ? तुम जैसे मधुपका क्या ? आज यहाँ मँडराये,
कल वहाँ गुजार किया और अभिराम कुमुम एकके बाद एक
तुम्हारे तीक्ष्ण रम-गोपकोसे विवते गये । तुम्हारा भाग्यशाली
अक खाली कब रहा है ?

गेटे—भ्रम है तुम्हारा, रानी । जीवन एक मात्र तुम्हारे आमोदसे उन्मद है,
मात्र तुम्हारी व्याधिसे पीडित, तुम्हारे प्यारसे आलोडित । अन्त-
रङ्गके पीडास्थलपर हाथ रखता हूँ, उसे पकड नहीं पाता । नहीं
जान पाता तुम्हारा वह छलिया रूप कहां घर किये बैठा है, सदा
मेरी पकडसे दूर, गहरे, और गहरे, पहुँचसे दूर गहरे ।

लोती—रात कठिन होती है, वोल्फगाग, आजकल सुरमयी तारो भरी
रात, खिलखिलाती व्यग करती । खिडकीसे देखती करवटे बदलती
हूँ । अन्तरके मेरे विचारोकी भाँति चमकता तारा उठना है, पीछे
लम्बी सुनहरी लीक छोडता दौड पडता है, टकराकर टूट जाता
है, हजार-हजार टुक, जैसे मेरी हजार-हजार कणोमे विखरी
छितराई साधें । काँप जाती हूँ डरसे, मेरे मित्र । नहीं जान पाती
रहस्य उसका क्या है । कोई जैसे मेरे ही हियेसे मेरा मरवस लिये
जाता है दूर, बहुत दूर, रेगती डैन्यूवके जगलोकी ओर, आलमकी
भेदभरी काली मालाओके परे ।

गेटे—और मैं जैसे मुन्न । सूनी अँधियारीमे कुछ टटोलता पर पाता नहीं
हूँ । दूर गाते हुए स्वरकी चोट जैसे नसोमे समा जाती है । भूला
सपना जैसे जी उठता है । लगता है किमीने एक साथ साजपर
जोरसे हाथ मार दिया और दिलका हर तार झन्ना उठा, देर तक
झन्नाता रहा ।

लोती—कितना दूर है वह ऊपरका ससार, गेटे, और लोग उधर जानेका कितना प्रयास करते हैं । कितने गिरजे, कितने सम्प्रदाय उस ओर पहुँचनेका प्रयत्न नहीं कर रहे ? पर सच कितना सूना है वह जगत् । और अपना यह ससार कितना भरा है, चाहे पीडाओसे ही क्यों न भरा हो, चाहे सिसकती यादोंसे ही क्यों न हो, टूटी साधोंसे ही क्यों न हो ।

गेटे—लोती, कितनी कमनीय हो तुम ? तुम्हारे ये मधुर भाव कितने कोमल हैं, कितने विकलकारी । और इससे तुम अपनी अभिनव कान्तिसे भी कितनी अधिक आकर्षक हो जाती हो, तुम शायद नहीं जानती । शायद यह भी नहीं कि तुम्हारी इन मंदिर जिज्ञासाओंमें, इनकी भोली प्रतीतोंमें उस दक्खिनी हवाका जादू होता है जो जब तब प्रभातकी अँगड़ाइयो-सा जगलोमें भटक पड़ता है ।

लोती—तुम्हारा यह ललाट, कवि, सदा मुझे गोथिक शील्डकी याद दिलाता है, फिर मध्यकालीन वीरोकी, और फिर आर्थरसे एकिलिस तककी एक परम्परा-सी बन जाती है ।

गेटे—पर क्या पेरिसकी याद नहीं आती ?

लोती—नहीं, मेरे पेरिस, पेरिसकी नहीं । क्योंकि मुझे राही प्रोमेथियस प्यारा है, प्रोमेथियस सीमाएँ न माननेवाला, सदा अतृप्त प्यासा, नतत अनुरागका दिव्य वाहक, यद्यपि अति मानव फ्राकेन्स्टाइन नहीं ।

गेटे—तुम कितनी मधुर हो, कितनी मादक, कितनी अभिनव कान्तिमती ! तुम्हारी आँखें रजनीके रहस्योंसे भरी हैं, पलक वोझिल है । मंदिर, पर कितनी निष्ठुर हो तुम, मेरी आफ़ोदीती, मेरी क्रूर दीनन ! [पात आकर घुटने टेक देता है] जीवनको

तिरस्कृत न करो, भुवनगायिके, रग भर दो डममें और हवाएँ
क्षितिजपर उसे ले उड़ेगी, उम अभिरजित सुरभिको ।

लोती—वहके, वहक चले तुम, मेरे कोमल गायक । मेरे प्रोमेथियम, अब
तुम्हारे असयत विलासके पख खुल पड़े । चेतो, नहीं फ्रान्केन्सटाइन
की छाया पड चली है । शीघ्र, वरना उसकी महाकायिक जिह्वा
हम दोनोंको चाट जायेगी । और अब चली, देर हुई । [चलनेको
होती है]

[गेटे जैसे निद्रासे जाग उठता है]

गेटे—देखो, अभी नहीं, लोती । अभी न जाओ । अन्धेके पट जैसे खुल पड़े
हैं । पल्लव-पल्लव रजनीके झरते आसवकण, मुक्ताभ हिमकण
लेनेको पुलक उठा है । जाओ नहीं, विश्वास रखो, प्रोमेथियम
फ्रान्केन्सटाइन न होगा, न होगा फ्रान्केन्सटाइन, मानो ।

[दूर हटती आवाज]

लोती—फिर-फिर, मेरे असयत प्रियतम, फिर मिलेगे । जब तक बुद्धिरूपी
विकल वातास कामजलदको क्षितिज पार बहा चुका होगा ।
अल्विदा, जोहान ! अल्विदा प्रिय ! और अगली रात, अगले दिन
मुबारक !

वाचक—लोतीको गेटे अब भी प्रिय है पर लोती जानती है वह रसप्रिय
भ्रमर है, ससारी जीव नहीं । स्वयं उसे अल्वर्ट कुछ विशेष प्रिय
नहीं है, कम से कम गेटे जितना नहीं । पर उसमें सयम है, वह
कभी प्रणयके उन्मादमें नहीं खोती, उन्माद उसे हो ही नहीं सकना ।
लोतीका उससे विवाह हो चुका है । फिर भी वह गेटेमें निरन्तर
मिलती है, पर ईमानदारीसे, पतिके साथ पूरी वफादारी बरतती ।
गेटेकी ओरसे वह कभी उदासीन, कभी विमन न हुई । उसी पुरानी
रीतिसे, पुराने प्यारसे मिलती रही । सालों । फिर एक रात जब

अल्बर्ट नहीं था, गेटे अपने कमरेमें बैठा कुछ लिख रहा था,
नौकरने प्रवेश कर कहा, फ्राऊ चारलोती वृथ ।

गेटे—[वेगसे उठते हुए] स्वागत, लोती । वडे भाग्य जो पग इधर फिरे ।
आज अकेले कैसे ?

लोती—आज गेटे, अल्बर्ट नहीं है । पर मैं अकेली भी नहीं हूँ, जोहान ।

गेटे—[इधर-उधर देखता हुआ] कहाँ ? कोई तो नहीं है । किसके
साथ आई ?

लोती—[धीरेसे] अपने प्रोमेथियसके साथ, उसके फँले असीम डैनोकी
रक्षामे, उसके फँले प्यारके घेरेमें ।

गेटे—[कुछ गम्भीर होकर, भारी घहराती श्रावाजमें] क्यों सोया
उन्माद जगाती हो, लोती ? क्यों खामोश साजको छेड़ती हो ?
क्या मतलब इस तेवरका ?

लोती—मतलब कि अभिमार करने आई हूँ । अपने प्रिय जोहानसे मिलकर
प्यारका भार हल्का करने ।

गेटे—नहीं समझा, लोती, और समझाओ भी नहीं वरना सीवन टूट
जायेगी, सीवन जो सालो रसमें डूबती उतराती रही है । न
तोड़ो उसे ।

लोती—सुनो, गेटे । आज मैं तुमसे कुछ साफ-साफ बात करने आयी हूँ ।
इधर आ जाओ, इधर पाम ।

[गेटे धीरे-धीरे पास आ जाता है । उसके पैरोंके पास घुटनोंके
बल बैठ जाता है ।]

लोती—नहीं-नहीं, कुर्सीपर बैठो । रहने दो यह भूमिका और ध्यानसे मेरी
बान सुनो ।

[गेटे चुपचाप कुर्सीपर बैठ जाता है । और चुपचाप देखता
रहता है]

लोती—गेटे, तुम समझते हो मैं तुमसे दूर-दूर रहने लगी हूँ। मैंने तुम्हें छोड़ दिया है, इसलिए कि अल्बर्टसे व्याह कर लिया है। भूलते हो, गेटे। आज भी इस हृदयमें प्यारकी आग वैसे ही धधक रही है जैसे पहले धधकती थी। सुनते हो, गेटे।

गेटे—[बहुत हल्केसे] सुनता हूँ। कह चलो।

लोती—आग पहले भी हियेमें धधकती थी, आज भी धधकती है। पर आज तुम उन राखमें बसी सुलगती चिनगारियोंको देख नहीं पाते। और मैं चिनगारियोंको ज्वालाका रूप नहीं दे सकती। क्योंकि तुम और वह अल्बर्ट निश्चय दोनों उनके बहुत पाम हो, लपटोंमें दोनोंका अनिष्ट हो सकता है। पर विश्वास करो, दोनोंको गरम रखनेसे इन्कार मैं नहीं करती। मैं फिर भी तुम्हें प्यार करती हूँ, कवि।

[लोती चुप हो जाती है, गेटेको देखती है]

गेटे—चुप कैसे हो गई, लोती ?

लोती—इसलिए कि तुम कुछ कहना चाओगे।

गेटे—मैं ? नहीं।

लोती—नहीं, गेटे, तुम्हारे मनमें कुछ है, पूछो।

गेटे—सचमुच अगर तुम मुझे प्यार करती थी, लोती, तो तुमने मेरे विवाह के इशारोंको ठुकरा क्यों दिया ?

लोती—क्योंकि, गेटे, तुम विवाहके लिए नहीं बने हो। विवाह करके बँधना होता है। तुम बँध नहीं सकते, विवाह तुम्हारे लिए नहीं है। और यदि तुमसे विवाह करती, तो तुम्हारे साथ मैं भी नष्ट हो जाती। आज जीवित रहकर तुम्हारी भी रक्षा, दूरसे ही मैं कर पाती हूँ। और तुम्हें यदि प्रस्ताव करनेका अवसर देती तो उसे अस्वीकार कर तुम्हें अपमानित करना मुझे अमीनार

न था । पर तुम कही टूट न जाओ । मैं भी टूट न जाऊँ, इससे मेरा व्याह कर बंध जाना नितान्त आवश्यक था । पर अब जो इधर तुम्हारी बढ़ती हुई गम्भीरता देखी तो रहा न गया । आई कि एकवार सब कुछ तुमसे कह तो दूँ । तुम्हें, 'फाउस्ट'के रचयिताकी स्थिति समझते देर नहीं लगनी चाहिए ।

गेटे—[उच्छ्वास छोड़कर] लोती, घाव भरा न था, पर उसे दवा रखा था । अब शायद वह फिर एक बार खुल जाए । पर मैं तुम्हें गलत नहीं समझूँगा । जानता हूँ, तुमसे गलती नहीं हो सकती, नारीसे गलती नहीं होती । सही, तुमने अगर वह ससार न सम्हाला होता तो सारा उजड़ गया होता, मिट गया होता । न तुम होती न मैं होता । आज हम दोनों हैं, पर, खैर, कैसे है वह नहीं कह सकता ।

लोती—गेटे, मनको मत धिक्कारना । उसने अनुचित कुछ नहीं किया है । उसे केवल समयका कवच दो ।

गेटे—दूँगा लोती, दूँगा उसे समयका कवच । पर मनमें कवचका भार धारण करनेकी शक्ति है या नहीं, सो नहीं कह सकता । चाहूँगा कि तुम्हारी, अल्वर्टकी, राह न काटूँ ।

लोती—नहीं, गेटे नहीं । इसीलिए आज मैं यहाँ आयी हूँ, सुनसान रातकी राह, अकेली । कोई कुछ भी कह सकता है, पर आई हूँ कि हम सब एक राह चले, जिसमें राह काटनेकी बात हो न आये । वोलो, चलोगे ?

गेटे—नहीं कह सकता, लोती, पर प्रयत्न करूँगा । अम्याससे अँधेरी कठिन राह भी सूझने लगती है, सर हो जाती है । कोशिश करूँगा ।

लोती—कोशिश करो, गेटे, वस कोशिश करो । सब सम्हल जायगा । और न भूलो कि लोती आज भी सूने दिलके वीरानेमें एक मूरत निहारा करती है, कुछ गुनगुनाये स्वरोको याद करती है, गुनगुनाती है ।

तुम जानते हो, गेटे, वह मूरत किसकी है, वे गुनगुनाये स्वर
किसके हैं ?

गेटे—जाओ, लोती, अब जाओ ।

लोती—जाती हूँ, जोहान । मेरे प्रेमके एकमात्र अवलम्ब, जाती हूँ । चली ।
तुम सुखी रहो ! जियो, कि मैं भी जिऊँ । अल्विदा, मेरे मदाके
महचर, विदा ।

वाचक—गेटेका विदा-स्वर गायद चारलोती न सुन सकी । वह तब तक
चली जा चुकी थी । गेटे अवसन्न पडा रहा, उसी कुर्सीपर घण्टो ।
उसे यह भी ख्याल न रहा कि रातके अँधेरेमें लोती अकेले आयी
है, उसे पहुँचाना होगा ।

[सालो बाद]

वाचक—गेटे अपनी स्थितिसे बेचैन हैं । पतझड़के बाद सर्दियाँ आई हैं,
अब उसे होमर नहीं सुहाता । ओसियनकी रुग्ण कल्पना ही उसके
हृदयको छू पाती है । अपने ही समान नायककी कल्पना कर वह
'तरुण वर्दरके विपाद' उपन्यास लिख डालता है । अन्तर बम
इतना है कि उपन्यासका नायक वर्दर अपनी स्थितिसे बेकाबू होकर
आत्मघात कर लेता है । गेटे चुपचाप दूर चला जाता है । उप-
न्यास जर्मन समाजके ऊपर बमकी तरह फट जाता है । लोनी
अपना औचित्य अब भी निभाती है । पर गेटे दूर होटलके कमरेमें
हालकी लिखी कविता पढ़ता है ।

[आवाज पहले धीरे-धीरे गुनगुनाती-सी, फिर मधुर विकम्पित
गायन, हल्के वाद्यका स्वर—]

प्राण, मेरा मन न जाने आज कैसा हो रहा है,
आज जैसे विजन वन में विकल मानस रो रहा है,

आज मन पर बिजलियाँ है दूटती आतीं निरन्तर,
आज रग-रग शिथिल, तनगति मन्द मन्थर,
आज अन्तर मथित विचलित शान्ति अपनी खो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

रागिनी है विलख पडती, चाँदनी है दहन करती,
मलयवारि न दलान्ति हरती, क्षुब्ध मनमे ग्लानि भरती,
आज तन यह वेदनाका भार जैसे ढो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

आज वाणी मूक, कुण्ठित कण्ठ, क्षण-क्षण गात कम्पित,
वक्ष शक्ति दिसार, पल-पल आह भरता है प्रलम्बित,
यातनासे द्रवित कण-कण आज जैसे सो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

स्वेदसिक्त विभोर तन है, नीर-बोझिल नयन-पथ है,
चेतना है मूढ तन्द्रित, कल्पनाका भग्नरथ है,
अश्रु कणसे आज विरही यक्ष हार पिरो रहा है ।
प्राण, मेरा मन० ।

आज इस अन्तरगगनमे क्षुब्ध भ्रमवात उठते,
आज क्रन्दनवारिसे जैसे हमारे प्राण घुटते,
काल आज कराल अपने कुलिश-पाश सँजो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

प्रणय का वह राग गा दो, राग जो सम्बल हमारा,
अन्यथा मृतप्राय है हतभाग्य यह विरही तुम्हारा,
घोर दुर्दिन मे यहाँ जो आज धीरज खो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

वाचक—उन्नी होटलमे वाइमारका तरण ड्यूक ठहरा हुआ है । कविताका
स्पष्ट वाचन वह सुनता है, व्यग्र हो उठता है । वह स्वयं प्रणय-

कातर है। जान लेनेपर कि कवि गेटे हैं, वह उसे वाइमार चलनेको आमन्त्रित करता है। गेटे निमन्त्रण स्वीकार कर लेता है। वही वह वीगाड और गिलरमे मिलता है, वही उसके प्राय पचास वर्ष व्यतीत होते हैं, कवि गामक, राजनीतिज्ञके रूपमें। वही वह फ्रांसीसी राज्यक्रांतिका शोर सुनता है। वास्तिनलकी गिरती दीवारोंकी धमक, लुई और मारी अन्त्वानेतके गिरते मिरोंकी करुण आवाज और उस रोन्मपियरके मिरके गिरनेकी, जिमने गिलोतिनकी और जाते-जाते भी अपने वालोमें पाउडर लगाया था। और गेटेने व्यगपूर्वक मुमकरा दिया था। नेपोलियन सम्राट् होकर जेनामें जर्मनी, आस्ट्रिया और वाइमारकी शक्ति तोड़ चुका है, जहाँ गेटेका प्रभु स्वयं वाइमारका ड्यूक हारकर सब कुछ खो चुका है। उसी वाइमारको फ्रेंच सेनाके सिपाही लूट रहे हैं। अब वे गेटेके घर पहुँचते हैं—

[गलियो सड़कोपर रह-रह कर सेनाके भारी पैरोंकी आवाज, लुटते घरोंसे सिपाहियोंके मारे बच्चों-बूढ़ोंकी आवाज, ज़प-तप चलती गोलियोंकी आवाज, मरते हुओंकी आवाज, ग्रावह लुटती श्रीरतोंकी आवाज]

क्रिस्टिना—अब क्या होगा, जोहान ? सुन रहे हो यह ?

गेटे—सुन रहा हूँ। पर होगा क्या ? वही जो होता आया है। जो हो रहा है। आस्ट्रिया गया, प्रशा गया, वाइमार गया, रह जायेगी वम यही यतीमोंकी पुकार, आममानको छेदती दिशाओंमें घुमडती।

क्रिस्टिना—काश आज एम्परर मेरे सामने होता।

गेटे—हैं-हैं, क्रिस्टिना, एम्परर मानवीय आचारोंके परे है। जो वह उन्हींको देख पाता तो ये हरे-भरे खेत आज महमा लाल लहूमें क्यों भर जाते ? आस्टेरलित्स क्यों होता ? जेना क्यों होता ? वाइमारमें

यह खून-खराबी क्यों होती ? और रही तुम्हारे सामने एम्पररके होनेकी बात, तो उसका उत्तर प्रशा और आस्ट्रियाके राजकुल देगे । कवियोंकी अभिराम कल्पनाओंकी केन्द्र प्रशाकी रानीके सामने वह रह चुका है, गायकोंकी स्वप्निल व्यजनाओंकी आधार आस्ट्रिया की आर्चडचेजके सामने वह जा चुका है । भला उससे क्या होता है ?

[सिपाहियोंकी आवाज़—मारो ! पकड़ो ! गोलीकी आवाज़, नौकरका गिरकर कराहना]

क्रिस्टिना—हाय, घुस आये । हेरासकी आवाज़ थी यह ।

गेटे—मार डाला उसे ।

[दोनोंका बाहर जानेके लिए उठना । सहसा सगीनके साथ सिपाहियोंका प्रवेश]

सैनिक १—लाओ, सब रख दो ।

सैनिक २—बैठे ताक क्या रहे हो, जैसे कहीके ड्यूक हो ।

[पासके कमरेमें ताले टूटनेकी आवाज़]

क्रिस्टिना—हाय, सब तोड़ डाला ।

गेटे—क्रिस्टिना, धीरज ।

सैनिक ३—[प्रवेश करता हुआ] तिजोरीकी चाबी दे दो, जल्दी दे दो ।

गेटे—[चुप]

क्षपान—[प्रवेश करता हुआ] चाबी मिल गई ?

सैनिक ३—उठता क्यों नहीं । द्रैठा है जैसे ड्यूक है ।

[गेटेकी ओर सगीन लिये दडता है]

क्रिस्टिना—जालिम, ड्यूकमें बढ़कर है वह, ससारके कवियोंका मुकुटमणि गेटे । [गुच्छा फेंककर] ले चावियाँ ।

सैनिक—हा, हा, जालिम, खूबसूरत जालिम ? कवि ! हा, हा, कवि ?

क्षपान—ठहरो, ठहरो । क्या कहा ? क्या गेटे ? वोल्फगांग गेटे ?

क्रिस्टिना—जोहान वोल्फगांग गेटे ! वाइमारका डिप्लोमेट-जेनरल वोल्फगांग गेटे, कवि गेटे । यह कौन आ रहा है ?

[सहसा दौड़ते शिलरका प्रवेश, कप्तानको रुका देते हुए]

शिलर—कप्तान, यह एम्पररका हुक्म ।

[कप्तान पढ़ता है]

[शिलरसे मिलनेके लिए गेटे बढ़ता है । क्रिस्टिना हाथ बढ़ा देती है, शिलर घूमता है, दौड़कर फिर वह गेटेके गले लग जाता है ।]

क्रिस्टिना—खूब आये शिलर !

गेटे—शिलर !

शिलर—गेटे !

कप्तान—महाकवि, मैं शर्मिन्दा हूँ ! यह एम्पररका हुक्म है—‘कवि गेटेके घरकी रक्षा करो’ ।

क्रिस्टिना—घर तो उजड़ चुका है । रक्षा अब किसकी होगी ?

गेटे—शान्त, क्रिस्टिना !

कप्तान—मुझे बड़ा खेद है । आगे और बोखा न हो इससे मैंनिक आपके द्वारकी रक्षा करेंगे । अल्विदा !

[सैनिकोंसे] दो सैनिक यहाँ रहकर बराबर घरकी रक्षा करो ।

किसी ओरसे कोई हमला न हो, सावधान !

[सैनिक और कप्तानका प्रस्थान]

गेटे—खूब आये, शिलर !

शिलर—खूब आये ! जान बच गई ।

शिलर—शुक्र खुदाका ! जीससकी हजार शुक्रिया !

गेटे—जेनाका क्या हाल है ?

शिलर—जेना तबाह है, मारकाट मची है, ड्यूक बचकर निकल गया है ।

गेटे—वाइमारको क्या कहें ?

शिलर—वाइमारका हाल देखता आ रहा हूँ ।

वाचक—गेटे, क्रिस्टिना और शिलर धीरे धीरे दूसरे कमरेमें जाते हैं ।
सोनेके कमरेमें, ग्रन्थागारमें । विस्तर बिखरे है, पुस्तकें बिखरी
है, बक्सोंके ताले टूटे पड़े हैं, चीजे, जो बची है, बाहर फैली है,
बाकी कीमती चीजे मिपाहियोंके किट-वैगोमें चली गई है ।

गेटे—शिलर, देख रहे हो ?

शिलर—देख रहा हूँ । शर्म ।

गेटे—[व्यगते] फ्रांसीसी राज्यक्रान्तिका यह शालीन परिणाम ।

शिलर—गेटे, अन्याय न करो, यह एम्पररके कारनामोंका परिणाम है,
कोसिकाके लुटेरेका । नेपोलियनका और नेपोलियन क्रान्तिका शिशु
नहीं, उसका हत्यारा है ।

गेटे—क्रान्ति और एम्परर ! 'त्रासका राज' और नेपोलियनके कानून !

[गेटे चुपचाप कुर्सीपर बैठ जाता है, घरसे बाहर दूर और
निकट सैनिकोंकी आवाज़, लूट-खसोटकी आवाज़, गोलीकी
आवाज़, घायलोंकी आवाज़]

वाचक—गेटेके मरनेके दो वर्ष पूर्व । क्रिस्टिना अब वृद्ध गेटेकी पत्नी है ।
वाइमारके अपने घरमें दोनों बैठे हैं । पतझड़के दिन । आसमान
सूना सूना लगता है । पेड़ नंगे हैं, वल्लरियां नगी है, एकाधपर
पत्तियां छापी हुई हैं । दिनका तीसरा पहर है । गेटेका विशाल
शरीर बूटापेसे सिकुड़ गया है, बाल भी कुछ झड़ गये हैं, श्वेत
केशोंके गुच्छे फिर भी गालीन सौन्दर्य व्यक्त करते हैं । क्रिस्टिना
गेटेमें बहुत छोटी है, प्रायः पचीस वर्ष । पचाससे ऊपरकी है पर
रूप रंग कुछ ऐसा है कि चालीससे अधिक नहीं लगती । सालो
महाकविके साथ मित्र भावमें उसीके घरमें रह चुकी है और अब
उनने उसमें व्याह कर लिया है । तीसरे पहर गेटे उससे साहित्य

पढवाकर सुना करता है । अभी अभी ओमियनका एक अंश सुनाया है ।

गेटे—क्रिस्टिना, रहने दो । आज बस बस ।

क्रिस्टिना—क्या बात है, प्रिय, आज ऐसी उदासी क्यों ? पढ रही थी और लगता था कि तुम्हारा मन कहीं और है ।

गेटे—सही, क्रिस्टिना, मन मेरा काव्यमे दूर था ।

क्रिस्टिना—कहाँ ? क्या स्मृतियाँ घूम पड़ी थी ।

गेटे—हाँ, स्मृतियाँ । कहीं जाती नहीं वे । मनके कोनेमे उनका अव्यार जैसे दबा रहता है, कुछ समान-मा, जहाँ उधर भटका कि जैसे ऊपर का ढक्कन खुल गया और एकके बाद एक वे निकलने लगती हैं । मनुष्य नहीं जानता, कितनी शक्ति है उसमे । दूर दिनो-मालो-की सँजोयी स्मृतियोका वह घनी है, कितना विशद, कितना विपुल कोप है उसका, क्रिस्टिना ।

क्रिस्टिना—बड़ा विपुल, असीम । पर क्या कभी उन्ही स्मृतिवोकी याद मन-को दुःखी नहीं कर देती ?

गेटे—सही, क्रिस्टिना, दूवारी हैं वे । दोनों ओर चोट कर सकती हैं, करती हैं । कभी-कभी आदमी उनसे बचना भी चाहता है, बच पाता नहीं ।

क्रिस्टिना—भला आज किसकी याद आयी, जोहान ?—फ्रेड्रिकाकी ? चारलोतीकी ? मिनीकी ?

गेटे—नहीं रानी, उनकी नहीं, यद्यपि उनकी याद भी आती है । अनेक बार आयी है, वह गये जलकी तरह, अचानक उठ आये बादलों-की तरह । पर अभी उनकी याद नहीं कर रहा था ।

क्रिस्टिना—फिर किसकी, प्रिय ?

गेटे—आज मुझे अपने सिद्धान्तगुरुकी याद आयी, हर्डरकी और उस

अभिनव गायक शिलरकी, जो देखते-ही-देखते दिगन्त तक व्याप्त हो गया था और देखते-ही-देखते उसीमें एक दिन विलीन भी हो गया ।

क्रिस्टिना—पर हर्डरकी भावसत्तासे आज तुम कितने दूर हो, कवि ।

गेटे—मही, क्रिस्टिना, पर हर्डर यदि न होता तो शायद मैं भी आज न होता । बाकी, हाँ, आन्दोलनोसे अब मेरा सपर्क न रहा । शिलर सम्भवत आज नहीं होता जो मैं हूँ ।

क्रिस्टिना—शिलर, हाँ, मधुर गायक शिलर ।

गेटे—और लेनिंगकी याद आयी ।

क्रिस्टिना—लेसिंगकी, जिसके बुद्धिवादके अखाड़ेको तोड़नेमें तुम्हारा खासा हाथ रहा है । [हँसती है]

गेटे—नही, पर लेनिंग कितना महान् था, इसकी कल्पना तुम नहीं कर सकती, क्रिस्टिना । उसकी कल्पना वह कोई नहीं कर सकता जिनने लेनिंगको न देखा, उसके युगको न जाना ।

क्रिस्टिना—प्रिय, तुम विषादकी ओर वह चले । कही तुम्हारे उपन्यास 'वर्दरके विषाद'की भाव-भूमि तुम्हारे मनमें न उतर पड़े । निश्चय पनझड़का प्रभाव तुम्हारी चेतनापर पड़ने लगा है ।

गेटे—मही, क्रिस्टिना । पर उसकी एकमात्र दवा तुम हो । तुम जो, इतने पतझड़, इतने शिशिर देखकर भी सतत वमन्त बनी रही ।

क्रिस्टिना—उसका कारण है, कवि ।

गेटे—कहो, कालको चुनौती देनेवाली, दोलो कारण उसका ?

क्रिस्टिना—कविका सामीप्य । तुम्हारे निकट हजार साल रहकर भी मैं अपनी वाग्नि सुरक्षित रख सकती हूँ, प्रियवर । [हँसती है]

गेटे—[हँसता हुआ] पर सतत यौवनको कालिदासके माहित्यमें, संस्कृतकी परम्परामें क्या कहते हैं, जानती हो न ?

क्रिस्टिना—जानती हूँ—उर्वशी, मेनका । यानी, कवि, अब तुम गालीपर उतर आये न ?

[दोनों हँसते हैं]

गेटे—आज, क्रिस्टिना, सुबहमे ही कालिदामकी याद आती रही है, महा-कविकी शकुन्तलाकी । कितनी सरल कल्पना है रानी, कितनी सुकुमार, कितनी मदिर, कितनी शालीन !

क्रिस्टिना—और होमर, ओमियन ?

गेटे—ठहरो, क्रिस्टिना, ओछा न करो उस देश और कालका अतिक्रमण कर जानेवाले कविको । वह कैशोर पार ताहण्यकी भूमिपर यौवन-का स्वस्थ भोला पदन्यास, प्रकृतिकी उन्मुक्त वायुमे कामाङ्कुरका प्रस्फुटन, और

क्रिस्टिना—और असमय ही छलिया भ्रमरका महर्षिकी अनुपस्थितिमे आक्रमण । [हँसती है]

गेटे—[हँसता हुआ] और दरवारमे नारीत्वका कितना उद्दाम चुनौती-भरा आचरण । सब याद आता रहा, एकके बाद एक । क्रिस्टिना, भला वह करुण पद तो सुना दो । तुम्हारी वाणीसे महाकविकी भारती बड़ी मधुर लगती है ।

क्रिस्टिना—कौन-सा ?

गेटे—मरीचिके आश्रमवाला । दुष्यन्त शकुन्तलाको लाञ्छित कर दरवारमे निकाल देता है । वह मरीचिके आश्रममे चली जाती है । अगूठी देखकर जब राजाको उसकी याद आती है, राजा हृदयको लक्ष्यकर तब कहता है, 'हत् हृदय, जब मृगनयनीने बार-बार तुम्हे जगाया, कहा, उठो, मुझे चेतो, तब तुम न चेतो और आज जब दुःग तुम्हे ठोकर मार रहा है तब तुम उसकी गहराई नापने उठ पड़े तो, अभागो !' फिर दुष्यन्त देवामुर-मग्नममे चला जाता है । वहाँमे जीतकर जब लौटता है तब मरीचिके आश्रममे उतर पड़ता है ।

उम शान्त वातावरणमें कण्व नहीं, मालिनी तटका वह ब्रह्मचर्या-
श्रम नहीं, दुर्वासा नहीं, मरीचि है, पके जीवनका फल भरत है,
नई कोपलोके फूटनेसे पहलेका पतझड़ है । और तभी वही चुप-
चाप पति द्वारा परित्यक्ता, भाग्यकी मारी शकुन्तला अपना
विरहव्रत निभा रही है । क्रोध पिघल गया है, राग, साधनाके
कारण, वरदान बन गया है, व्रत कठिनसे कठिन वैराग्यको भी
जीत लेनेकी शक्ति रखने लगा है । दुष्यन्त स्तब्ध रह जाता है,
जब उसे पतिके व्रतमें लीन देखता है—शकुन्तला मलिन वस्त्र
पहने है, कठोर नियमोंके अनुकूल एकवैणी धारण किये हुए
अत्यन्त कठोरहृदय पतिके लिए अत्यन्त कठिन विरहव्रत कर
रही है ।

क्रिस्टिना—अच्छा, वह वसने परिधूसरे वसाना ?

गेटे—हाँ, वही, 'वसने परिधूसरे वसाना ।'

क्रिस्टिना—अच्छा सुनो [वाद्यका हल्का मधुर स्वर]—

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतराष्ट्रवेणिः ।

अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रत विभर्ति ॥

नई दिल्लीमें तथागत

दृश्य ?

[तुषित स्वर्गसे बुद्ध जब पृथ्वीपर उतरने लगे तब पालमके हवाई श्रद्धेपर बड़ी चहल-पहल देखी । हवाई जहाजोंको उड़ते, चढ़ते-उतरते देखा, उनकी आवाज कानके पर्दे फाटने लगी । तथागत और आनन्द दोनों काषाय पहने जो वहाँ आसमानसे उतरे तो चकित इधर-उधर देखने लगे । उनको लेने पणिकर आये थे । दो काषायधारी ज्योतिष्मान् व्यक्तियोंको उन्होंने भूमिपर उतरते जरूर देखा पर पहचान न सके । फिर उनकी ओर धीरे-धीरे बढ़े ।]

पणिकर—[अपने आप] ये तथागत तो हो नहीं सकते । मूर्तियोंसे सर्वथा भिन्न है । वैसे स्वप्नमे जो समय दिया था वह तो हो चुका । [घड़ी देखकर] पृथ्वी और स्वर्गकी घड़ीमे कुछ फर्क पड नकता है । चलूँ इन्हीसे पूछूँ, सम्भव है ये उनके पार्षद हो, इन्हें पहले ही भेज दिया हो । इन्हीसे पूछूँ [जाते हैं] ।

तथागत—आनन्द ।

आनन्द—सुगत ।

तथा०—पणिकर नहीं आये । समयसे सपना दे दिया था न ?

आनन्द—हाँ तथागत, सपना तो समयसे दे दिया था ।

पणि०—[पास जाकर] नमामि, भन्ते । मैं पणिकर हूँ । तथागत क्या पधार रहे हैं ? आप सम्भवत उनके अग्रसेवक हैं ।

तथा०—[आनन्दसे पालीमे] यह क्या आनन्द ?

आनन्द—चकित मैं भी हूँ सुगत ।

तथागत—[प्रत्यभिवादन करते हुए हिन्दीमे] तथागतको पहचाना नहीं ?

आनन्द—[पणिवकरसे तथागतकी ओर इशारा करते हुए]—आप, तथागत ?

पणि०—[चौंक कर] ऐ ! तथागत ? पर तथागतकी शकल तो—

आनन्द—मूर्तियोसे नहीं मिलती ।

[तथागत और आनन्द एक दूसरेको देखकर हँसते हैं, पणिवकर लजाते हैं ।]

पणि०—[सकुचाते हुए] जी-ई, भन्ते ।

आनन्द—मूर्तियाँ काल्पनिक हैं, मित्र । तथागतके निर्वर्णिके पाँच मी माल णेछे बनी । पहली मूर्ति यूनानी शिल्पीने कोरी । और मूर्ति-मे-मूर्ति बनती गई । शकल मिले कैसे ?

पणि०—[तथागतसे सिर झुकाकर]—मुगत, अनजाने दोष हुआ, क्षमा करेंगे ।

तथा०—[हँसते हुए] कुछ बात नहीं, पणिवकर, कोई बात नहीं ।

पणि०—मुगत, पहले एक बात बता दें—संस्कृतमें बोलूँ, पालीमें या हिन्दी में ? हिन्दी भाषा-भाषी मैं स्वयं नहीं हूँ पर अभ्यास कर लिया है ।

तथा०—संस्कृत बोलना तो मैंने जीवन-कालमें ही छोड़ दिया था, नैमे मुना है कि यहाँ कुछ ऐसे लोग भी हैं जो संस्कृतको ही राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहते हैं । [तीनों हँसते हैं] पाली बोलनेकी भी आवश्यकता नहीं । हिन्दीका अभ्यास कर लिया है । आनन्दने मतर्क कर दिया था कि यदि हिन्दीमें न बोला तो काये जण्डाफा सामना होगा ।

पणि०—[मुसकराते हुए] अनुमति दें तो एकाग्र धाने और ममजा दें—

तथा०—बोओ ।

पणि०—जब किसी राष्ट्रका प्रधान, प्रधान मन्त्री या राजनीतिक व्यक्ति आता है तब हमारे राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री या 'चीफ ऑफ प्रायो-

कल' स्वागतके लिए आते हैं। तथागत तीनोंसे भिन्न है, इससे स्वागतके लिए उनका आना नहीं हुआ। तथागत उनके यहाँ न आनेका अन्यथा न मानेंगे। और सुगत सार्वजनिक स्वागत पसन्द नहीं करेंगे। वैसे सुगत चाहे तो उपचारत राष्ट्रपति या प्रधान मन्त्रीसे मिल सकते हैं। दोनों सज्जन हैं, मिलना स्वीकार कर लेंगे। मिलकर प्रसन्न होंगे।

आनन्द—नहीं, पणिकर, तथागत किसीसे मिलना नहीं चाहेंगे। उनका उद्देश्य दूसरा है। नगर देखकर लौट जायेंगे।

पणि०—पर एक प्रेस-कान्फ्रेंस तो करनी ही होगी, भन्ते।

तथा०—प्रेस-कान्फ्रेंस ? वह क्या ?

पणि०—वही समाचार-पत्रोंके प्रतिनिधियोंसे मिलना, उनके प्रश्नोंका उत्तर देना, तथागत।

तथागत—समाचार-पत्र ?

पणि०—हाँ, सुगत, उनमें खबरे छपती हैं। उन्हें पता नहीं है, वरना इस हवाई अड्डेपर ही अखबार बेचनेवाले चिल्लाते होते 'दिल्लीमें तथागत ! दिल्लीमें तथागत !'

[तथागत और आनन्द एक-दूसरेको कौतुकसे देखते हैं।]

आनन्द—फिर तो प्रेस-कान्फ्रेंससे हो-हल्ला मचेगा। इसे न करे तो कैसा ?

पणि०—उसके बिना कैसे बनेगा, भन्ते ? [तथागतसे] सुगत, उसे अस्वीकार न करे। मैं उसके लिए एकान्तका प्रबन्ध कर लूँगा। फिर कोई बात छपेगी भी नहीं समाचार-पत्रोंमें। चाहे सार्वजनिक स्वागत न रखे।

तथा०—अच्छा, कर लो। पर अन्तिम दिन।

पणि०—भला, सुगत।

[मोटरमें प्रस्थान]

दृश्य २

[राष्ट्रपति-भवनका संग्रहालय । परिणतकरने अध्यक्षको मूर्तियों-का रहस्य समझानेके लिए बुला लिया । उसे बताया नहीं कि समागत तथागत और आनन्द हैं । अध्यक्ष बुद्धको उनकी मूर्तियाँ समझाने लगा—]

अध्यक्ष—[मथुराकी खड़ी मूर्ति दिखाकर] यह बुद्धकी मूर्ति है, अभय-मुद्रामें खड़ी । ऐसी मूर्ति बुद्धकी कभी न बनी ।

आनन्द—तथागतने तो अपनी मूर्ति बनानेका निषेध कर दिया था न ?

अध्यक्ष—वही तो हीनयान था ।

तथा०—हीनयान ?

अध्यक्ष—हाँ, छोटा शकट, जैसे महायान, बड़ा शकट ।

तथा०—बुद्धसे इन शकटोंका भला क्या सम्बन्ध है ?

आनन्द—ठहरिए, आपको गुप्तसे समझाना होगा—देखा, जब भगवान्ने अपनी मूर्ति बनानेका निषेध कर दिया तब केवल उनके पद, छत्र बोधि-वृक्ष आदि प्रतीकोंमें ही उनकी उपस्थितिका बोध कराया जाता था । फिर जब पहली मदीमें बोधिसत्त्वका महायान चला तब सभीपके देवताकी आवश्यकता पड़ी । इसमें बुद्धकी मूर्ति बनी, बोधिसत्त्वोंकी मूर्ति बनी, आनन्द आदि उनके चेलोंकी बनी ।

तथा०—पहली मदी ईसावी । बोधिसत्त्व । महायान ।

[आनन्द कुछ चकित है, परिणतकर मफुचा रहे हैं]

अध्यक्ष—ईसावी मदी, ईसाकी । ईसा—क्रिस्ट, उगीके मवत् १० सी०,

बी० सी०—समझे ?

[तथागत आनन्दकी ओर देखते हैं, दोनों चुप हैं]

बोधिसत्त्व, सम्बुद्ध होनेके पहलेकी स्थिति है । उसने कहा था—

बुद्धका बताया अर्हत्का मार्ग स्वार्थपर है, अकेले निर्वाणका, मैं तो तब तक निर्वाण न लूँगा जब तक एक व्यक्ति भी अनिर्वर्ण रह जायगा। अर्हत्का मार्ग हीनयान है, उसपर एक ही प्राणी चढ़कर भवसागर पार हो सकता है। महायान हमारा मार्ग है। महा-यान, जिसपर चढ़कर सभी पार हो सकते हैं। इसीसे बोधिसत्त्वकी मूर्तियाँ बुद्धसे सख्यामें कुछ कम नहीं हैं।

आनन्द—[तथागतसे स्वर्गकी बोलीमें जो अध्यक्ष और पणिकर नहीं समझ पाते] सुना, भगवन्, यह बोधिसत्त्व तो बड़ा अगिया-वैताल निकला। आप ही पर लकड़ी लगा गया। आपके पन्थको हीनयान बताकर अपना महायान बना गया। बड़ा सयाना निकला यह तो। [तथागत मुसकराते हैं]

आनन्द—पर यह मूर्ति कैसी है ? इसके सिरपर यह क्या है ?

अध्यक्ष—‘वम्प आफ इन्टेलिजेन्स,’ प्रतिभाका चिह्न, और यह ऊर्णा है।

आनन्द—और ये लम्बे-लम्बे कान भी क्या बुद्धके थे ?

अध्यक्ष—[कुछ रुखाईसे] जी [पणिकर सङ्गुचाते हैं] [दशावतारकी मूर्ति दिखाकर] इसमें भी यह नवी मूर्ति बुद्धकी ही है। यहाँ ये विष्णुके अवतार हैं।

आनन्द—विष्णुके अवतार।

अध्यक्ष—हाँ, महायानके बाद वह तो होना ही था।

आनन्द—[तथागतसे स्वर्गकी भाषामें] लीजिए, सुगत, जिस ब्राह्मण परम्परापर आपने प्रहार किया था, जिसके देवता विष्णु-ब्रह्मा-शक्र तथागतके पार्षद थे, उन्हींकी श्रेणीमें, वह भी अवतार, और गौण अवतार बनाकर, सुगतको बैठा दिया।

[तथागत मुसकराते हैं]

[मध्याह्न हो गया है। पणिकर तथागतको लचके लिए चलनेका आग्रह करते हैं। फिर धीरे-से अध्यक्षके कानमें कुछ

कहते हैं। वह आँखें फाड़-फाड़कर तथागतको देखने लगता है, फिर बार-बार उनकी ओरसे उनकी मूर्तियोंकी ओर देगता है। बुद्ध आदि चले जाते हैं।]

अध्यक्ष—[व्यगकी हँसी-हँसता हुआ] हैं। तथागत बने हैं। जैसे मैं तथागतको जानता ही नहीं। इन्हीं मूर्तियोंमें मेरी जिन्दगी गुजरी और मैं बुद्धको न पहचानूँगा। ढाई हजारवाँ साल है न निर्वाण-का, एकसे एक नजारे देरानेमें आयेंगे। एकमें एक भेस देरानेको मिलेंगे। देखो न, क्या रूप बनाया है ! और यह पणिकर ! राजनीति जो न करा दे।

दृश्य ३

[लोकसभाकी राहमें]

आनन्द—युग बदल गया है, सुगत, लोगोंके व्यवहार ममझमें नहीं आते।

तथा०—हाँ, युग बदल गया है। तुमने जो दुनिया देखी थी उसमें आज ढाई हजार साल हो चुके।

पणि०—जी, तबमें हमारी सस्कृतिमें बड़ा अन्तर पड़ गया है। उस बीच अनेक सस्कृतियोंका हमारी सस्कृतिपर प्रभाव पड़ा, अनेक सस्कृतियाँ हमारी सस्कृतिमें घुली-मिली, हमारी सस्कृति नवीन हुई।

[तथागत और आनन्द दोनों पणिकरका मुँह देगते हैं]

आनन्द—सस्कृति क्या ?

पणि०—आ हाँ, सस्कृति हमारा नया गढ़ा हुआ शब्द है। यह दयाका आचार-व्यवहार, रहन-सहन, आहार-लेनाम, आदर्श-निर्माण, धर्म-दर्शन आदि प्रकट करता है।

आनन्द—नर-नारी, उनकी वेश-भूषा कितनी बदल गई है । नारियोंकी तडक-भटक देखकर डर लगता है । तथागतने कहा था—

पणि०—कहा था तथागतने । पर हमारे जीवनके तो हर भागमें नारी नरके साथ है ।

तथा०—सच मिट गया, आनन्द ।

आनन्द—मघ मिट गया, सुगत । सुगतकी वाणी सच हुई । सुजाता-विशाखाका यह रूप ?

पणि०—मघ फिर पनप चला है, तथागत । पर निश्चय आजका गृहस्थ प्रव्रजित कम होता है । वैसे अपने देशमें सावुओंकी संख्या कम नहीं है ।

आनन्द—लोगोंकी आस्था मर-सी गई दिखती है । मन देख-सुनकर बोझिल हो जाता है ।

पणि०—इम युगने शिष्टाचारको नये मान दिये हैं ।

आनन्द—हाँ, सो तो देखता हूँ—शिष्टता बहुत है, आचार कम है ।

[तथागत आनन्दकी ओर भवोपर तनिक बल डालकर देखते हैं, आनन्द कुछ सहमकर चुप हो जाते हैं]

[राहमें पणिकर नई दिल्लीके मकान, विशाल भवन, सचिवालय राष्ट्रपति भवन आदि दिखाते चलते हैं]

पणि०—नई दिल्लीकी डमारते कैसी लगी, तथागत ? इनकी एकदृश्यता कितनी असाधारण है ?

तथा०—नही कह सकता, पणिकर । इन भवनोंमें प्रवेश करते कदाचित् भय लगे । हाँ, इनमें एकदृश्यता है, इनकी कि उनका प्रभाव अनावर्ण्य हो जाता है । विभिन्नता सौन्दर्यकी जननी है, इनकी ओर इतना नाम नहीं लेने देती ।

पणि०—यह इष्टिया गेट है । इसकी शिला-शैलीको तनिक लक्ष्य करें, सुगत ।

तथा०—हाँ, देखना हैं—भारतने गिल्फकी अनेक घाराएँ उस बीच गलग की हैं। पर अनेक बार तो इतना उच्छिष्ट रूप ही देखने लो मिलता हैं। प्राचीन अमूरी और यवन-ग्रीक जैलीके भोटे-कूट नमूने अविक देखनेमे आते हैं। कही-कही पिछले कालके मानी-गिल्फकी सुरचिपूर्ण अनुकृति भी दिख जाती है। हाँ, आनन्द उम्मी गिल्फ निश्चय स्तुत्य हैं, पर वह भी पुराना ही हैं। देखना हैं, भारतने इधर अपना कुछ नहीं किया है—केवल आभामोकी परम्परा खडा करता गया है। इसीमे इसके नर-नारी भी वृत्रिम यात्रिक प्राणी मे लगते हैं। लगता है, आनन्द, कभी ये कुछ मोचने नहीं, स्वयं। 'लेवल' लगा लेते हैं। नारियोमे अमावारण अनाकर्षण है, एक प्रकारका विनीतापन, आनन्द, सधके लिए एक प्रकारस इनमे कुछ खाम डर अब नहीं है। पर आज तो सब ही नहीं रहा, आनन्द। [लम्बी साँस रीचते हैं]

[लोकसभाके द्वारपर। पणिकर तीनोंके कार्ड सत्रीको दिखतो ह। सब लोग भीतर पहुँच जाते हे। दर्शक-गलगीमे बँट जाते ह। निर्वाणके ढाई हजारवें सालके समारोहके रावपर विचार हो रहा है।]

प्रधान मन्त्री—मैं तो समझता हूँ कि हमे इस समारोहको राष्ट्रीय 'लेवेल'-पर लेना चाहिए।

[एक महान् गुजरानी लेकर उटते हैं, अभी फिरेमे चुनकर लाये हैं। छरहरा-पतता बदन, सुदर्शन, सुरचिमे सजे।]

गुज०—फिर सोमनाथके मन्दिरके निर्माणको राष्ट्रीय 'लेवेल' पर क्यों नहीं लिया जाता ?

प्र० म०—देखिए, मन्त्रोंको मिलाये नहीं, वह जीर बात है। सुझाती

नमस्सकी कितनी जरूरत हमारी आजकी दुनियाको है, अह बात यह है । नोमनाथके मन्दिर और इससे कोई निस्वत नहीं ।

[एक बगाली सदस्य उठते हैं]

ब० स०—हमको बुद्ध जोयोन्ती से कीछू विरोध नहीं है । जरूर मानाईए बुद्ध जोयोन्ती । ओ हामरा है । दशावतारोमे हामरा वह एकटा अवतार है । वह वेश है । परन्तू हामरा बात यह है जे जब हीन्दू शवाका बात होता है, जन शधका बात होता है, राम-राज-परिपदका बात होता है तब कीछू बात राष्ट्रीय नहीं होता, नोमनाथका निर्मान राष्ट्रीय बात नहीं होता, बुद्धका हो जाता है, गेई बात हम कहना माँगता है । और कीछू बात नहीं है, गेई बात हम बोला—

[सब हँसते हैं ।]

अध्यक्ष—आर्डर ! आर्डर ! [घण्टी]

तथा०—यह भारतका तथागार है ?

पणि०—सुगत, यह हमार 'तथागार' है ।

आनन्द—आसन प्रज्ञापक कहाँ है ?

पणि०—वहाँ, वह तिरछी नीची बारकी गाँधी टोपीवाले ।

आनन्द—शलाका ? शलाकागाहापक ?

पणि०—अब यहाँ शलाका नहीं चलती, भन्ते, पर गुप्त मत देनेका प्रयत्न है । मत या तो अध्यक्ष गिन लेता है या उसके लिए किसीको नियत कर लेते हैं ।

[तथागत कुछ शान्त चिन्ताशील हैं ।]

आनन्द—भगवान्ने कहा था—यदि देवताओंकी सभाको देखना चाहो तो वज्जियोंके कार्यशील राजाओंको देखो ।

तथागत—देवता मिट गये, आनन्द, वज्जी मिट गये, लिच्छवी मिट गये, विदेह न रहे, मल्ल न रहे, शाक्य तो मेरे मामने ही नष्ट हो गये थे ।

[इसी समय बाहर जोर मचता है—‘विनोबा भावे जिन्दावाद !’ ‘सर्वोदयका झण्डा फहरा दो !’ ‘लोहिया जिन्दावाद !’ कांग्रेसकी किसानी नीति मुर्दावाद !’ समाजवादी दलता जलूम निकला है उसीका लोक सभाके द्वारपर प्रदर्शन है । तथागत, आनन्दको लिये पणिकर बाहर आते हैं । जलूमसे एक त्रिभान सहसा छेड़ देता है ‘भारतका डका आत्ममे बजाना दिया वीर जवाहरने’ ।—जलूमके नेता चिल्लाते हैं—‘अरे ! अरे ! यह नहीं, यह नहीं, यह गाना नहीं । अरे वह दिनकरकी कविता गाओ, ‘जयप्रकाश नारायण’ पर ।’ पर पड़ते रामने जोर पकड़ लिया । पूरा जलूम वीर जवाहरका आत्ममे डका बजाना गा उठता है । लोक सभाके सोशलिस्ट सदस्य, जिन्होंने प्रदर्शन संगठित किया था, घबडाकर ‘हाय ! हाय !’ करते बाहर निकल आते हैं । पर अब तो जवाहरका जम अम्बर चूने ही लगता है । तथागत और आनन्द चम्कित-चमत्कृत देखते रहते हैं ।]

दृश्य ४

[प्रेम कान्फ्रेंस । राजघाटके पाम लानपर प्रेम-कान्फ्रेंस हो रही है । अनेक अंग्रेजी हिन्दी पत्रोंके रिपोर्टर आये हुए हैं । यह भारतीय पत्रोंके ही प्रतिनिधि है । अंग्रेज और अरब विदेशी पत्रकार उस कान्फ्रेंसमें अलग रगे गये हैं । उनपर विद्वान नहीं किया जा सकता । इस सम्मेलनमें बड़ी सतर्कता रखी गई है ।

सबसे प्रतिज्ञा करा ली गई है कि स्वान्तःसुखाय वे चाहे जितने प्रश्न तथागतसे करें, पर उन्हें छापें हरगिज नहीं। इसका पूरा इन्तजाम कर लिया गया है कि किसी प्रकारका 'स्कूप' संभव न हो सके। जिस प्रश्नका तथागत चाहे उत्तर दें, चाहे न दें। यदि उनमेंसे किसीका उत्तर बुद्धकी जगह आनन्द देना चाहे तो दे सकें। बुद्ध वीरासनमें बैठे हैं। कुछ हटकर आनन्द बैठे हैं, पास ही परिण्वकर, सामने पत्रकारोंका समुदाय बैठा है।]

परिण्वकर—मित्रो, आप सबको पता ही है कि किन परिस्थितियोंमें आजकी यह प्रेस-कान्फ्रेंस हो रही है। आशा करता हूँ, आप लोग आनन्द निम्नमें पकड़ करोगे। पर आपके पटले मैं नशाग्राममें

तथा०—[बैठे-ही-बैठे] उपासको, सद्धर्मके शरणागतो, तुम्हारा मंगल हो। तथागत इस धरापर आज कोई ढाई हजार वर्षोंके बाद आये हैं। आशा थी कि उपसम्पदा, प्रव्रज्याकी महिमा बढी होगी, निराश हुए। सघ, देखते हैं, विच्छिन्न हो गया। [सब एक दूसरेको देखते हैं। किसीके पल्ले कुछ नहीं पडता। अलग-अलग कानाफूँसी होने लगती है। परिण्वकरसे लोग कहते हैं कि अब प्रश्नोंका मौका दिया जाय। परिण्वकर आनन्दके कानमें कहते हैं, आनन्द तथागतके कानमें। तथागत चेष्टासे बता देते हैं कि उन्हें मजूर है। पहला प्रश्न 'पत्रिका'का प्रतिनिधि करता है जिसे राष्ट्रपति भवन संग्रहालयके बंगाली अध्यक्षने बुद्ध-सवधी अपनी प्रतिक्रिया बता दी है।]

पत्रिका-प्रति०—भगवन्, आपकी शकल हमारे संग्रहालयोंकी आपकी मूर्तियोंमें क्यों नहीं मिलती ?

[बुद्ध चुप है—उत्तर देना नहीं चाहते—आनन्द भी चुप है]
हिन्दी पत्रिका-प्रति०—बोले, भगवन्, उत्तर दे ।

[बुद्ध चुप]

हिन्दुस्तान टाइम्स—उत्तर तो देना चाहिए ।

टाइम्स [बम्बई]—अच्छा, आप किस मार्गमें रहते हैं, तथागत ?

तथागत—मुगत निर्वण्ण है ।

पत्रिका०—निर्वण्ण क्या ?

[बुद्ध चुप]

फ्रीप्रेस०—भगवन्, आपके निर्वाणकी तिथि क्या है ?

तथा०—वैशाख-पूर्णिमा ।

क्रानिकल०—माल बताये, तथागत ।

तथा०—आजमे दो हजार पाँच सौ अट्ठावन वर्ष, नौ मास, तेरह दिन पूरा ।

अनेक पत्रकार—तिथि बताइए, तिथि, सवन्, माल ।

आनन्द—तब कोई सवन् प्रचलित न था ।

आर्यभित्र०—वाह, यह कैसे हो सकता है ? गृष्टि-सवन् तो गदागे है ।

आनन्द—यानी मनुष्य-जन्ममें भी पहलेमें ?

आर्य०—जी ।

आनन्द—उसका उपयोग भग्न कौन करता था ?

[तथागत, आनन्द, पणित्तर मुसकराते हैं ।]

पत्रिका०—तथागतने जो अपने निर्वाणकी तिथि बताया वह वा त्मागे
जयन्तीकी तिथिमें प्रायः उनमठ साल पहले ही बीत गई ।

[सभी पत्र उत्सुक हो उठते हैं]

पत्रकार [एक साथ]—हाँ, हाँ, यह कैसे ?

[बुद्ध चुप]

पत्रिका०—ओल्डेन्बर्ग फिर क्या झूठा है ? सेनार, लवी सब गलत है ?

टाइम्स—कर्न, ल्यूडर्ग, टामन, सब गलत ?

[बुद्ध चुप है]

हिन्दुस्तान०—कावेल, डेविड्स, ब्लाख सब ?

पत्रिका०—आर अमादेर राखाल बाबू ?

[बुद्ध चुप]

[पणिकर देखते हैं कि बड़ी अभद्रता हुई जा रही है, तत्काल कान्फ्रेंस बन्द कर देते हैं । कमरे 'क्लिक-क्लिक' बजने लगते हैं । पणिकर नन्ना करते हैं कि कान्फ्रेंसकी शर्तके मुताबिक तस्वीर नहीं लेनी है । पर तस्वीरें तो ले ही ली गई ।]

[और दूसरे दिन देशके सारे पत्रोंमें फोटूके साथ निकल गया बुद्धके वेशमें धूर्त । ढाई हजारवें सनारोहमें ठगनेका प्रयत्न ! अंग्रेजी 'पत्रिका'ने सम्पादकीय लिखा—'एक्स्पोज्ड !' हिन्दी 'पत्रिका'का सम्पादकीय और भी भडक उठा—'तथागतका पर्दा फाश !' और प्रात ही लोगोकी भीड़ पणिकरके आवास पर ऐसी लगी कि पणिकरकी तो अतिथिके अपमानसे आत्मा ही कूच कर चली । बाहरके द्वार बन्द कर तथागतले सामने कारदण्ड खड़े हो जाते हैं ।]

तथा०—[मुत्तकराते हुए] तुम्हारा कुछ दोष नहीं, पणिकर । तथागत आश्वन्त है, तुम आश्वन्त होओ ।

आनन्द—[पबडाहटमें] नुगत, बाहरके द्वार तोड़े जा रहे हैं, टूटने ही वाले हैं । बड़ी भीड़ है, जल्दी करे, अपनी ऋद्धि-सिद्धियोंका

प्रयोग, नहीं तो जान मकटमें पड़ जायेगी । जल्दी करे, मुगन,
यह पत्रोंकी दुनिया है, पत्रकारोंकी । जल्दी ।

[द्वार टूट जाते हैं । भीड़ बँगलेमें घँस चलती है । पर जय
तथागत वाले कमरेमें पहुँचती है तो उसे खाली पाती है । वस
पणिवकर किकर्त्तव्यविमूढ़ खड़े रहते हैं ।]



रानी विद्या

[श्रीनगर । काश्मीरके राजा क्षमगुप्तका दरबार । मेहराबी दरवाजोपर तोरणके नीचे भारी हसचित्रो वाले परदे पड़े हुए हैं । राजा मुसाहिवोके बीच बैठा हँस रहा है और मुसाहिव हर प्रकारसे उसे हँसा रहे हैं । चापलूसीका बाजार गर्म है ।]

राजा—रय्यक, कामिनी और कचनका नाम भला एक साथ क्यों लिया जाता है ?

रय्यक—देव, दोनों कमनीय हैं, इसलिए ।

हिम्मक, यशोधर—[एक साथ] साधु, रय्यक, साधु । कमनीय दोनों ही हैं, नच ।

मठ—देव, पर मुझे यह उत्तर कुछ जँचा नहीं । देवकी आज्ञा हो तो दास भी कुछ निवेदन करे ।

राजा—निश्चय, जरूर-जरूर । भला मूरखराज मठ क्यों न अपना अटकल लगाये । वोलो, वोलो, मठ ।

मठ—देव, कामिनी और कञ्चन दोनोंका नाम इसलिए एक साथ लिया जाता है कि दोनों मूल्यमे खरीदे जा सकते हैं ।

दिदा—हूँ । मूर्ख ।

राजा—[हँसता है] क्यों, देवि, अभद्र कहा कुछ मठने ? [जोरसे हँसता है, सब हँसते हैं, केवल रानी और रय्यक चुप हैं ।]

दिदा—अभद्र तो हैं ही, देव, यह अशिष्ट विदूषक । पर मैं समझती हूँ, देव, अगर यह सचमुच कोई समस्या है तो इसे कवि ही हल कर सकेगा, रय्यक ही, मठ विदूषक नहीं ।

राजा—सुनी, मठ, देवीकी बात सुनी ? [हँसता है, सब हँसते हैं ।]

मठ—सुनी, देव । पर प्राणदान पाऊँ तो कुछ कहूँ । [राजा रानीकी ओर देरता है, नभासद भी कुतूहलसे देखते हैं । रानी दिदा

सिंहासनपर आसन बदल लेती हैं, उसकी भृशुटियां नड जाती है।]

राजा—प्राणदान दो, देवि, विट और विदूषक अपने कथनमें म्प्रतन होते हैं। अदण्ड्य। अभय दो उसे।

[सब रानीकी ओर आतुर नयनो देखते हैं। मठ अपनी आंखें आधी मीचकर होठ चाटता है।]

दिदा—[कुछ खिन्ही हुई सी] देवीका सभामदोको भय रहा कहाँ ? और दुर्विनीत मठके प्राण तो अनिर्वचनीय बोल कर भी देवकी ऋणामे कभी सकटमें नहीं पडते।

राजा—बोलो, मठ, बोलो। देवीका वरदहस्त तुम्हारे सम्मकपर है।

मठ—देव, कामिनी और कञ्चन दोनों सारीदे तो जा ही सकते हैं पर दोनोंमें तनिक भेद है—[तनिक रुककर] जहाँ कञ्चन गरीश जा सकता है वहाँ वह सारीद भी सकता है। कामिनीको भी। सो दोनोंमें मात्र कामिनी ही परार्थमात्रिका है।

[राजा मुसकराता है, सभामद मुसकराते हैं, रानीके नेत्र और चढ जाते हैं।]

—पर देव। कामिनीका अहम्—

ठ—[बात काटता हुआ] देव। मैंने अभी अपनी बात पूरी नहीं की।

राजा—उसे छोड़ो नहीं स्य्यक, बोलते दो।

[स्य्यक मिर झुका लेता है, सभामद मुसकराते हैं।]

मठ—[मुसकराता हुआ] देव, पर पहले स्य्यककी बातानी उगार दूंगा—कामिनीके अहम्का। अहवादी तीन तरहके होते हैं—पहले वे जो स्वय रहते हैं और दूसरोंको रहने देते हैं। दूसरे वे जो स्वय रहते हैं पर दूसरोंको नहीं रहने देते, तीसरे वे जो न

स्वयं रहते हैं न दूसरोको रहने देते हैं । नारी इस तीसरे प्रकार की अहवादिनी होती है ।

[राजा हँसता है, सभासद् हँसते हैं, हँसीसे सारा भवन गूँज उठता है, केवल दिद्दा कुपित रहती है ।]

राजा—देवि, मठका तर्क तीक्ष्ण है, हा-हा-हा ।

सभासद्—[हँसते हुए] साधु । साधु ।

राजा—लगा, मठ, रुय्यकके एक चपत । तेरी गोटी लाल है । हा । हा । हा । [हँसता है]

मठ—यह ले, देव । [उठकर रुय्यकके चपत लगा देता है । सब हँसते हैं, रुय्यक भी राजाके डरसे रूखी हँसी हँसता है, रानी क्रोधसे होठ काटती है ।]

हिम्मक—देव, बात तो कामिनी और कञ्चनकी खरीदारीकी हो रही थी, अब यह अहवादकी कैसे होने लगी ?

मठ—मूर्ख, हिम्मक, दीरता और बुद्धि दो चीजे हैं, परस्पर विरोधी । तर्कसम्मत बुद्धि होती तो तुम समझ गये होते—कञ्चनसे भी परे होनेके कारण नाराका अहम् जाग्रत होता है, इसीसे उसके घोर अहवादकी बात कही । अब अगर नारीकी खरीदारीकी बात नुनना चाहो तो उसे भी कहे ।

[सब राजाकी शीर देखते हैं ।]

राजा—हाँ, मठ, उमकी भी व्याख्या कर ।

मठ—सुने देव, सदासे नारी कञ्चनसे, द्रव्यसे, खरीदी जाती रही है । अप्सराओको निष्क-शत मान मिलते थे, आम्रपालीको हजार सुवर्ण, वानवदत्ताको सौ सुवर्ण, वसन्तमेनाको सौ दीनार

दिद्दा—[बात काटकर] मूर्ख, वेश्याएँ ही मात्र नारी हैं तुम्हारी ? कुलवधुएँ और वारागनाएँ समान हैं ?

[राजा मुसकराता है, सब भीतर ही भीतर हँसते हैं ।]

मठ—ठिठार्ड क्षमा करे, देवि, अभयदान दे । दामका नम उतना ही निवेदन है कि नारी पहले नारी है पीछे वेश्या या कुलपू, और अपने मूलरूपमें क्रयशील है । हाँ, कुछको द्रव्यमें रागीदा जाना है, कुछ को उपायन-उपहारमें, कुछको प्रेमसे, कुछको चाटुकारी-चापलूसीसे । यदि नारी झुकती नहीं तो या तो स्थान नहीं, एकान्त नहीं या उसके प्रणयकी भीख माँगनेवाला नर नहीं ।

[रानीके नथने क्रोधसे फटकने लगते हैं, पत्तीना चेहरेपर छा जाता है ।]

दिद्दा—देव, उपहामकी भी सीमा होती है । भाँडको मिर चढाना एक दिन अनर्थ करेगा ।

राजा—शान्त हो, देवि ।

[रानी आसनसे उतर बिना परिचारिकाकी सहायताके तंगडाती सभाभवनमें बाहर चली जाती है । राजा हँसता है, सभागद् हँसते हैं]

मठ—बड़ा अपराध बन गया, देव, डग अकिञ्चन दागमें ।

राजा—श्लाघ्य है मूर्ख, तू श्लाघ्य है, मठ । ले यह कगन ।

[राजा रतनजटा कगन मठको देता है । 'कदणवर्षी राजा क्षेमगुप्तकी जय ।' से सभाभवन गूँज उठता है । राजा राज-पुरुषकी श्रौर देवता है, राजपुरुष कगनोंकी यैली तिथे राजाके सामने घुटने टेक देता है । राजा यैलीमें निकाल-निजाल करण बाँटने लगता है । 'कदणवर्षी कश्मीरराजकी जय ।' की आवाज गूँजती रहती है]

दृश्य २

[श्रीनगरके राजमहलका रनिदास । शयनागारमे रानी दिद्दा सो रही है । दीवारोपर सजीव चित्र लिखे हैं—कराकोरम और पामीरोसे पीर पजालकी नफीली चोटियो तक । एक ओर डलमे कमलोका वन अपना मकरन्द उडा रहा है दूसरी ओर ऊलरमे शिकारोके बीचसे हसोके जोडे सरक जाते हैं । गङ्गा-जमुनी पलंगपर रानी पडी हैं, जैसे आकाशसे तारिका टूट पडी हो, जैसे जूहीका निष्कलक फूल दूधिये विस्तरपर अकेला पडा हो । दासियाँ भीतर भी हैं, बाहर भी, कुछ जग चुकी है कुछ अँगडा रही है । और तभी वंतालिकका स्वर सुन पडता है—]

वंतालिक १—जागे, देवि, जागे ।

निशाकी वेणीको सँवारता निशाकर पीला हो क्षितिजसे कवका नीचे उतर गया है । वन्दो-भ्रमर कमल-काराके भीतर मुक्तिकी आशासे गुन-गुना रहे हैं और खण्डिताओको मान देता दिवाकर कमलिनियोके होठोको चूम रहा है ।

जागे देवि, जागे ।

वंतालिक २—जागे, देवि, जागें ।

दरद और तुखार, पृछ और राजपुरी, लोहर और उरशा, मध्यदेश और गौड हाथ बाँधे आज्ञाकरणके लिए नतमस्तक है । मुक्तापीड ललितादित्यकी विजयोकी टूटी शृखला जोड़ें, देवि, जोड़ें । जागे, देवि, जागे ।

[रानी दिद्दा आँख मलती हुई, शय्यापर उठ बैठती है । दासियाँ उसे फूलोके दस्ते प्रदान करती हैं, दासियाँ फूलोसे वसे जलसे उसका मुँह घुलाती हैं । दिद्दा तकियेके सहारे करवट बैठ जाती है ।]

वैतालिक ३—जागे, देवि, जागे !

रात, चोर और चाँद अपने कोटरोमे जा छिपे । दूर दक्खिने
आया मन्द मलय तुम्हारी काजल काली अल्लोमे गेल रहा है
वातायनोमे वालारुण उनमे अपने सुनहरे तार पिरोने जा रहा है ।

दिदा—[जम्हाई लेती हुई] आह ! कितना दिन चढ़ आया । मरिरे, तूने
मुझे जगाया क्यों नहीं भला ?

मदिरा—रात देरसे मोई थी, देवि, इसीमे जगानेका माहम न हुआ ।

दिदा—मुकुटका भार ढोना कुछ आसान नहीं, मरिरे, उम छातेकी तरह
है जिसमे धूपका निवारण कम होता है कम और कन्नाका शम
अधिक ।

[द्वारपातिका मागधीका प्रवेश]

मागधी—देवि, मन्निवर आर्य नरवाहन दर्शनके लिए द्वारपर पंखारे है ।

दिदा—उनमे मेरा प्रमाद कह, माग थी, लिया ला ।

[मागधीका प्रस्थान और मन्त्रीके साथ फिर प्रवेश]

नरवाहन—[सिर झुकाकर] अकिन्न नरवाहन अभिपारा करता
है, देवि ।

दिदा—मोजन्य फले, आर्य ! क्या समाचार है ?

नर०—देवीका तेज तपता है, शत्रु सतायहीन है, डामरोके जहाँ-तहाँ
उत्पात निश्चय मुन पड़ते हैं पर देवीका प्रताप उन्हा बिना
उठने नहीं देता । निश्चिन्त हो, देवि ।

दिदा—निम्नेन डामरोको सर्वथा शीतल कर देता होगा, आर्य ! तुझका
जगार है वे, और एक चिनगारी भी जेठमे तप हो उठता है
सक्ती है ।

नर०—उम दिशामे भी निश्चिन्त हो, देवि । राजधर्मचारी और पताप
मैनिक सर्वत्र राजदण्डकी स्थापनामे लगे हैं । पिछले सामने जिन

ओछे जनोको सिर चढा लिया था अन्नभगवतीकी गालीनताने उन्हे यथास्थान कर दिया है ।

दिद्दा—सब आर्यके नीति-बलसे सम्भव हो सका है । मन्त्रिवरकी रक्षामे राष्ट्र नई शक्ति धारण करेगा । प्रजाका रजन कर सके, आर्य आजीर्वाद दे ।

नरवाहन—मंगल हो देवि । शत्रुवनिताओकी माँगसे सिन्दूर पुँछ जाय । राजा कालका कारण होता है, प्रजा राजाके अनुकूल कालको वरतती है । देवी क्षमताशील है, प्रताप और विक्रमसे, विश्वास है, ललितादित्य मुक्तापीटका गौरव लाँघ जायँगी ।

दिद्दा—आर्यकी सद्भावना सफल हो ।

[सिर झुकाकर नरवाहन चला जाता है ।]

दिद्दा—कालिन्दी, तुम्हारे चर उपस्थित है ?

कालिन्दी—उपस्थित है, देवि । आज्ञा हो तो प्रवेश करे ।

दिद्दा—बुलाओ [कालिन्दी द्वारपालिकाको सकेत करती है, द्वारपालिका बाहर जाकर चरोके साथ प्रवेश करती है]

चर १—जय हो, देवि । झेलमके दोनों ओरके प्रदेश सुशासित हैं । प्रबल दुर्बलवो नही सताता, साहसीक देवीके भयसे थर-थर काँपते हैं, पहाडो और जगलोके मार्ग सुरक्षित है ।

[रानी दूसरे चरकी ओर आँख उठाती है ।]

चर २—मीमा प्रान्तके दरदो-तुसारोमें शान्ति है । दिवगत देवके निधनमे जो आगे खलवली मच गई थी देवीके तेजसे वह तिरोहित हो गई है । वधु तीरकी केसरकी क्यारियोमे देवीके अश्व भत्त लोटते हैं और उनके अयात केसरमे लाल हो जाते हैं ।

[तीसरा चर नारी है । उत्तर पर रानीकी नजर पडते ही वह कुछ ऐना सदेत करती है कि रानी इशारेसे बाकी चरो और

सखियोंको हटा देती है । केवल मदिरा, मागची और कालिन्दी रह जाती हैं ।]

दिदा—जखी, आज क्या कुछ विरोध मवाद लाई है ? और तू तो उम वेशमे है कि मैं तो पहले पहचान ही न सकी ।

जखी—हाँ देवि, पिछले सप्ताह मैं डामरोंके बीच नली गई थी । वहाँ विववाके रूपमें रहनेके कारण मुझे मिर्के बाल मुडाने पड़े थे । चरका कार्य कठिन होता है, बुरूपिया बनना पड़ता है न, सो आज इस वेशमें हूँ ।

दिदा—अच्छा बता तो भला, वहाँ क्या देगा मुना ?

जखी—उगा देवि कि डामर और दरबारमें निकाले लोग राज्याके विपदा पड़्यन्त कर रहे हैं, कि दोनोंके बीच जो पत व्यवहार होता है उसमें एक विरोध छद्म-शब्दका प्रयोग होता है । पर उम शब्दको जानते भी मुझमें देवीके सामने उसे कहनेका साहस नहीं होता ।

[रानी और सखियाँ वने कुतूहलमें उसकी बात सुनती हैं ।]

दिदा—बोल, जखी, बोल । कह चल, क्या है वह छद्म-शब्द ?

जखी—साहस नहीं होता देवि, जो अभयदान पाऊँ तो कह ।

दिदा—कह जखी, जानती नही कि चर वैसे भी अब ग होता है ? फिर तू तो मेरी अर्थगामिनी भी बनती गयी है । बोल ।

जखी—वह छद्म-शब्द है, देवि—'पगु' ।

[सहसा रानीका मुख क्रोधमें लाल हो जाता है और सखियाँ सहम जाती हैं ।]

दिदा—[तमतमाई हुई, पर दृढ़ आवाजमें] हाँ, मुझे जान है वह गारी, यद्यपि गारी वह है नहीं । मैं विरहाग हूँ गरी, और मेरी मौन चन्द्रदेवाका पिता फगुण मुझे विरहाग रहता भी था । और जो फगुण भी इस पड़्यन्तमें शामिल हो तो कुछ अवसर नहीं,

पत्र-व्यवहारमे मेरा उल्लेख पगु शब्दसे होता हो । पर मैं पगु नहीं हूँ, और यह फल्गुण देखेगा । लोहरनरेश सिहराजकी दुहिता और हिन्दूकुश काबुल और लमगानके स्वामी भीमशाहीकी धेवती शासन करना और शासनमे शत्रुओको निर्मूल करना जानती है, यह फल्गुण देखेगा । कालिन्दी, दण्डनायकको कह कि कल सेनाके मैदानमे सैन्य-निरीक्षण होगा और उसके लिए वह मेरा विशद आदेश स्वयं मुझसे आज अर्धरात्रिको ले ले ।

कालिन्दी—जैसी आज्ञा, देवि । अभी आर्य दण्डनायकसे देवीका प्रसाद निवेदन करती हूँ ।

[सबका प्रस्थान]

दृश्य ३

[नगाडे, तुरही और शखकी निरन्तर गूँज । पैदल और घुड़-सवार सेनाके चलनेकी आवाज । बीच-बीचमे सेनानायकोके अस्पष्ट संचालनकी आवाज । रानी दिद्दा सैन्य वेशमे मन्त्रियो और दण्डनायकके साथ फैले मैदानमे सेनाका निरीक्षण कर रही है । रह-रह कर उसके घोडेका हिनहिनाना, उसकी टापोकी ध्वनि ।]

दण्डनायक—देवि, अभियानके लिए प्रस्तुत यही आपकी सेना है । कहे, अपने गजोको गङ्गा-जमुनाके संगमपर वारिक्रीडामे निमग्न करूँ, वहे अपने घोडोसे पामीरोको लाँघ जाऊँ । व्यूह-चक्रमे पारगत यह सेना, देवि, अत्रभवतीके सकेतके लिए उत्सुक है । सिन्धु-झेलमके संगमसे भोटोके परवर्ती प्रदेश तक समूचा जनविस्तार उनके भयसे धर-घर काँपता है । आज्ञा करें, देवि ।

दिहा—आव्वस्त हुई, आर्य, विनय और तत्परनामे भरी आपकी मेनाता प्रदर्शन देखकर। यही हमारा विपुल बल है हमारे राष्ट्रीय सुरक्षाका साधन। इसे सन्नद्ध रने, शीघ्र इसके अभिमानकी आवश्यकता होगी।

[पासके मन्त्री सान्धिविग्रहिकपर नजर डालती हुई]

मन्निवर, सुना है डामरोको उभाड कर फलगुण पणालिनी दिनामे राजधानीकी ओर बढ़ा आ रहा है।

[दण्डनायक सिर झुकाकर तनित हट जाता है]

सान्धि०—मही, देवि, हिम्मक भी फलगुणमे मिल गया है। पर अपनी सरहदकी सेना घाटियोंकी रक्षा कर रही है, राज्य निरापद है, आशका न करे, देवि।

दिहा—[मुसकराती हुई] आर्य, आपके-मे सान्धिविग्रहिक और आर्य नरवाहनमे मन्निवरके होत, आर्य दण्डनायकमे तत्पर बल मिले होते आशका कैसी ? पर डामरोका बल तोड राज्यमे सन्धि निरापद करना होगा।

[तीनों मस्तक झुका लेते हैं]

निश्चय, देवि। डामरोका बल टटकर रहेगा।

२६ मेनाको स्तुत्यावागेमें भेज दो, आर्य दण्डनायक। उगे तीन माहका अग्रिम वेतन दो, उगने हट दो कि डामरोका दर्ज नर्ण होने की सैनिकोको कर-मुक्त भूमि मिलेगी। राष्ट्रीय गरीब राष्ट्रीय अपार मित्र धनका अविहारी बनानी है। गवाका पुरस्कार उगाता भोग है।

['रानी दिहाकी जय ! रानी दिहाकी जय !' मे दिहाएँ गू न उठती हैं। मन्त्रियोंके साथ रानी महलकी ओर तौट पड़ती है।]

दृश्य ४

[दिद्दाका सन्नागार । रानी सखियोंसे घिरी युद्धकी खबरके लिए उत्तुक बैठी है । द्वारपालिकाका सहसा प्रवेश]

द्वार०—देवि, आर्य दण्डनायक सेवामे उपस्थित हैं, दर्शन चाहते हैं ।

दिद्दा—आर्य दण्डनायक ! युद्धस्थलसे अलग राजद्वारपर । उनका यहाँ क्या काम ? अच्छा, पधराओ उन्हें ।

[दण्डनायकका प्रवेश]

दिद्दा—आर्य, यहाँ कैसे, जब डामरोका विद्रोह नगर-द्वारपर चोटे कर रहा है ?

दण्ड०—अन्तिम दर्शनके लिए आया हूँ, देवि, प्रसादके लिए । डामरोकी कुमक लिये हिम्मक प्रादेशिक अधिरोह लाँघ आया है और शत्रुकी हरावल उदयरजके हाथमे है । मैं यह कहने आया, देवि, कि सम्भव है शत्रुकी चोटसे अपनी रक्षाकी प्राचीरे टूट जाँय, पर अत्रभवती उससे आशङ्कित न हो । एकागोकी रक्षक सेना राज-परिवारकी रक्षा करेगी जब तक कि मैं पामीरघाटीकी ओरसे शत्रुपर प्रत्याक्रमण न करूँ । मैं राजकुमारोको अपनी रक्षामे ले निकल जानेके लिए आया हूँ ।

दिद्दा—आर्य, नाहियोंकी धेवती भयभीत नहीं । जहाँ तक हो सके कर्तव्यका पालन करे । दिद्दा अपना कर्तव्य निश्चित कर चुकी है । हिम्मक और उदयरज उसके लोहेकी चमक देखेगे । राजकुमारोकी व्यवस्था कर चुकी हूँ । वे रनिवासमे नहीं हैं । दूरके विविध मठोमे हैं । राजधानीमे बाहर ।

दण्ड०—[जाता हुआ] चला, देवि, राजपरिवारका मंगल हो ।

[प्रस्थान]

दिदा—जाओ, वीरवर ! कज्मीर लाज-रक्षक, जाओ । [मागधीसे] अभी देख, मागन्धी, सैन्यवेश ला ।

मागन्धी, कालिन्दी आदि—[एक साथ] ऐ, देवी क्या सैनिक वेश धारण करेगी ?

दिदा—जीघ्रता कर, मागन्धी ! अब राजपानादमें बंटे रहनेका समय नहीं । लोहरोकी सन्तान कुममयमें अपना कर्तव्य जानती है । शाहियोंकी धेवती शत्रुके आक्रमणपर परकोटेके पीछे नहीं बैठती, उमने हिन्दूकुशकी बुजियां देगी है । कुम्भाकी लहराको तैर कर लाँघा है । जन्दी कर ।

[मागन्धीका प्रस्थान और रानीके सैनिक वेशके साथ फिर प्रवेश, सहारा द्वारपातिकाको हटाते हुए, मन्त्री नरन्वाहनका प्रवेश ।]

नर०—राज्योचित उपचारही रक्षा न करनेका अपराधी हूं, देवी, पर क्षमा करें, गद्दट मारे उपचाराल उत्तर है । मिहगज पर चढ़ा है । मित्र एकतामें पैर उगाड़ते ही चले हैं । अजमन्ती भाग, दोमस्थानीका मन्दिर अब भी सुरक्षित है । जहाज दही बहा रहा लेगी, सम्भवतः अन्तोंकी मना मरायातोंके लिए आ भगवती ।

दिदा—[सैनिक वेशमें सजती हुई] आगे अपना राजपाटा कर । मिहगजकी घंटी मकटमें मन्दिरों और मठोंका आवाज नहीं लेगा । उसका स्थान मिहगजकी हवायदमें है । चढ़, मागन्धी ! अब फिर है ?

माग०—दर-दर, देवि !

[प्रस्थान]

नर०—नावधान, देवि, कज्मीर राजकुमारों के मर जाने का दुःख हाथ नहीं जानी ।

दिदा—[घोड़ेपर चढ़नेकी आवाज; दूरसे दृढ़ आवाजमे] यह रणचण्डी है, आर्य, जो गुम्भ-निगुम्भके विरुद्ध अभियान कर रही है। नि शङ्क हो, दिदा शक्ति है और शक्ति दर्पिल बनी रहती है, जबतक टूट नहीं जाती। जबतक अङ्गार ठण्डा नहीं हो जाता उसे कोई छू नहीं पाता। [शङ्ख फूँकती सिंहद्वारकी ओर प्रस्थान]

नर०—जाओ, रणचण्डी, जाओ। जानता हूँ, तुम्हारे लिए तीसरा मार्ग नहीं। क्षेमस्वामी तुम्हारी रक्षा करे। [सिंहद्वारकी ओर प्रस्थान करता शङ्ख फूँकता है।]

[शङ्खध्वनि सुनते ही महलोकी रक्षक सेना रानीके पीछे दौड़ पड़ती है।]

[युद्धका कोलाहल, वीरोकी हुड्कार, मरते हुआकी पुकार, चमकती मशालोकी रोशनीमे घोड़ोकी टापोंकी आवाज, सहसा दूसरी ओरसे शत्रुपर हमला। देखते ही देखते शत्रुका पलायन और नदागत हमलावर सेनाका जयघोष, 'रानी दिदाकी जय।' 'लोहरनन्दिनीकी जय।' 'शक्तिरूपा दिदाकी जय।']

दृश्य ५

[कश्मीरी राजमहलका सभाभवन। रानी सिंहासनासीन है। मन्त्रिवर नरवाहन, सान्धिविग्रहिक, दण्डनायक आदि यथास्थान बैठे हैं। सामने शृङ्खलाबद्ध हिम्मक खड़ा है, सैनिकोंसे घिरा।]

दिदा—उदयरज निकल भागा, हिम्मक, पर तू कालके गाल पड़ा।

हिम्मक—नही रानी, राजकुमार निकल गये। और कालका गाल तो प्रत्येक वीरका अभिप्रेत है।

दिदा—क्या नमस्त्रा था तूने मुझे, हिम्मक, अवज्ञा नारी ?

हिम्मक—नहीं, रानी । हिम्मक तुम्हें अवज्ञा नहीं समझता । अगर वह तुम्हें अवज्ञा समझता तो उसे मेना लेकर आनेही आता। नहीं होती ।

दिदा—फिर इस राजद्रोहका मतलब क्या है ?

हिम्मक—मतलब यह है कि यह राजद्रोह है ही नहीं । शासन नारीका राजासनपर अधिकार नहीं मानता, न मैं ही मानता हूँ । कश्मीर पर तुम्हारा स्वत्व साहसीका स्वत्व है, जानो, और जीना उसे उसका पतिकार करेगा ।

दिदा—साहसीक क्या राजा नहीं होता, हिम्मक ? क्या सार राजकुमारों के निर्माता-पूर्वज साहसीक नहीं रहे हैं ? क्या गिरासनपर भी शासन सार राजत्वका परिचायक नहीं है ?

हिम्मक—है वह परिचायक, निश्चय । और जानता है और साहसीक तुममें कमी नहीं, और उनमें राज्याका कर्ण गार भी नहीं रह गया, पर हिम्मक और उदयरज तुमपर प्रहार करने लगे हैं, उदिरा परिणाम पर्यन्त ।

दिदा—उदयरज शासक, पर हिम्मक निराश्रित नहीं । तबहि हिम्मक गिरिनीके दागके बीच आ पया है ।

हिम्मक—क्या हिम्मक गिरिनीही दागके बीच आ पया है, रानी, गार । वाश कि आज वह वरान-गुप्त शास ।

दिदा—तो शासक वह रानीपर प्रहार करेगा ।

हिम्मक—रानीपर हिम्मक प्रहार नहीं करेगा, पर उस पर हिम्मक गिरिनीको गिरिनी, जैन आज भी रहता है—गिरिनी, गिरिनी दिदा ।

दिद्दा—हिम्मक, क्रोधकी प्रतिक्रियामे तुम्हारा न्याय न करूँगी । तुम्हें उचित दण्ड आर्य नरवाहन देगे । पर एक बात पूछती हूँ, हिम्मक ।

हिम्मक—पूछो, रानी ।

दिद्दा—गाली देते हो न मुझे, पर-पतिका होनेकी ? जो राजासन कुमार्ग-गामी पुरुषके सम्बन्धसे अशुद्ध नहीं हो पाता वही कुमार्गगामिनी नारीके सम्पर्कसे कैसे दूषित हो जाता है, भला कहो तो ?

हिम्मक—प्रगल्भ हो दिद्दा, जानता हूँ । पर यह भी जानता हूँ कि प्राण रहते नारीका स्वत्व कश्मीरके सिंहासनपर न मानूँगा । और जानती हो, इस मतका मैं अकेला नहीं हूँ ।

दिद्दा—जानती हूँ, साथ ही यह भी जानती हूँ शक्तिके साथ ही स्वत्वकी अधिकारिणी रह सकूँगी । पर हिम्मक, जीते-जी मेरे हाथसे कोई शक्ति न छीन सकेगा, न सिंहासन ही । और न शक्ति और सिंहासनकी परिधिसे उस समूचे राज-सुखका भोग करूँगी जो पुरुषके लिए शास्त्रसम्मत है । नारी होने मात्रसे न उससे वचित रहूँगी, न डरूँगी ।

[नरवाहनसे]

आर्य, न्याय करे इस राजद्रोही हिम्मकका । मैं चली रनिवासकी नमस्याओको सोचने । विनयस्थितिकी स्थापना मेरा पहला कार्य होगा । पामीरोकी ओरसे दण्डनायकके कुमकके साथ आनेकी सूचना मिली है । स्वागतका प्रबन्ध करें ।

नर०—जो आज्ञा, देवि ।

[दिद्दा उठती है, सभी उठ खड़े होते हैं । दिद्दाका सलियो सहित प्रस्थान]

वंतालिक—धर, धर पधारे, देवि ।

दृश्य ६

[रानी दिद्दाका शयनागार । दिद्दा सुनहरे पलंगपर लेटी है, मागंधी पास बैठी स्वामिनीसे सखी भावसे बात कर रही है । दिद्दा कुछ उदासीन, चिन्तित-सी है ।]

मागंधी—कारण क्या है, देवि, इम चिन्ताका ? मसारकी कोई वस्तु देवीको अलम्ब्य नहीं, कोई व्यक्ति नहीं जिसपर देवीकी दृष्टि पड़े और वह अकिंचन न हो जाय । फिर इस उच्चाटनका अर्थ क्या है, स्वामिनि ?

दिद्दा—कई दिनोंसे तुझसे एक बात पूछती रही हूँ, मागंधी ।

मागंधी—पूछें न, स्वामिनि ।

दिद्दा—वह कौन था, मागंधी, मन्त्रिवर नरवाहनके भवनमें उस दिन जब हम उनके आमन्त्रणपर वहाँ गये थे, वह आकर्षक तरुण ?

मागंधी—वह जो आर्यके दाहिने बैठा था ?

दिद्दा—नही जानती, मागंधी, कि कोई वाये भी बैठा था । मैंने तो वम एकको देखा था, फिर किसीको नहीं देखा, आर्य तकको नहीं ।

मागंधी—और वही आँखोंमें गड गया था ।

दिद्दा—व्याख्या न कर मागंधी, बता तू जानती है उसे कौन है वह ?

मागंधी—स्वच्छन्द वहती हवाको भला वासन्ती लताकी झुमती टहनी क्यों पूछे, देवि, कि हवा यह कौन है ? प्रवह, कि सवह, कि प्रतिवह ? क्या इतना पर्याप्त नहीं है कि वह मनको अपनी दोलामे डालकर झुला देती है ?

दिद्दा—सही, मागंधी, मनको अपनी डोलती दोलामे डालकर झुला देने-वाली हवाकी जानकारी उससे आगे कुछ विशेष अर्थ नहीं रखती, परसती हवाकी परससे ही जान लेती है कि यह प्रखर पामीरी है

या दक्खिनसे आनेवाली मलयानिल । वस्तुकी जानकारी भोगके सुखको दुगनी कर देती है ।

मागधी—खस है वह, रानी, तुग खस, पणोत्सके गाँवका खस, जिसे आर्यने पत्रवाहकका कार्य सौंप रखा है । अत्यन्त आकर्षक है न, देवि, वह खस, अत्यन्त काम्य ?

दिद्दा—सही मागधी, पर भला तूने यह जाना क्योकर ? क्या तेरा अन्तर भी तो दग्ध नहीं हो गया ?

मागधी—नहीं, देवि, मेरा अन्तर तो दग्ध नहीं हुआ, पर मैंने स्वामिनीकी आँखे निश्चय देखी थी और उनके मौन संचालनसे जाना कि इस ज्ञानकी आवश्यकता होगी एक दिन, और वस सग्रह कर लिया ।

दिद्दा—तू बड़ी चतुर है, मागधी । पर यह तो बता, आर्य भला इस पत्रवाहकको राजकीय पत्रोंके साथ मेरे यहाँ क्यो नहीं भेजते ?

मागधी—शायद इसलिए कि कही इससे राजकीय पत्र और पत्रवाहक दोनों न खो जायँ और हमारे पत्रवाहककी आवश्यकता पड़े ।

दिद्दा—ढीठ ! कितना जवान लडाती है । [दोनों हँसती है ।]

मागधी—खस आकर्षक है, देवि ।

दिद्दा—मैंने तो, जब तक वहाँ रही, उससे आँख ही नहीं हटाई, आर्यकी एक बात नहीं सुनी ।

मागधी—जभी तो आर्यने अपनी कही हुई बातोंको दुवारा पत्रारूढ कर स्वामिनीके पास भेजा ।

दिद्दा—जभी । क्या मोचा होगा आर्यने, मागधी ?

मागधी—क्या मोचा होगा आर्यने रुय्यकके सम्बन्धमे, रुक्क और दण्ड-नायकके सम्बन्धमे, पिगल और कठकके सम्बन्धमे, स्वामिनि ?

दिद्दा—अच्छा वन्द कर अपनी गन्दी जवान । पर देख यह खस जो है—

मागधी—नहीं, स्वामिनि । पर देवी यह धमशास्त्रकी परिधि प्रेमके क्षेत्रमे

कवसे खीचने लग गई। 'प्रणय निर्वर्ण है, मागधी, नि शक !'

क्या स्वामिनीने कभी नहीं कहा था ?

दिदा—[थकी-सी अँगड़ाती हुई] हाँ, कहा तो था, मागधी ! है ही प्रणय निर्वर्ण, नि शक ।

मागधी—फिर यह शका कैसी, रानी ? चन्द्रकी मरीचियोंको भेदपूर्वक सेती हो, या गधवहके पख चढी सुरभिको चुनकर भोगती हो ?

मकरन्दका सौरभ तो सर्वजनीन है, देवि, जैसे रानी सर्वजनीन है ।

दिदा—साधु, मागधी, साधु ! मकरन्दका सौरभ सर्वजनीन है, जैसे रानी सर्वजनीन है ।

मागधी—और सर्वजनीन रानीके लिए कुछ भी अग्राह्य नहीं, कुछ भी अभोग्य नहीं । ब्राह्मणसे खस तक सभी उसके उपास्य हैं, सभीकी वह उपास्य है, वह समूची प्रजाका रजन करती है—गजा प्रकृतिरञ्जनान् ।

दिदा—अरी तू तो बड़ी पण्डिता हो गयी, मागन्धी—श्लोकपर श्लोक गढ़ने लगी, महाभारत-कालिदासको मात कर दिया ! कहीं स्मृतिकार न बन जाय ।

मागन्धी—स्मृतिकार अगर बनी तो मेरी स्मृति मनु और याज्ञवल्क्यकी स्मृतियोंसे सर्वथा भिन्न होगी । उसके आचार-नियम उनमें भिन्न होंगे, सर्वथा कश्मीरके । पर मेरी श्रुति तो तूम हो, रानी । मेरा वम इतना प्रयास होगा कि मेरी स्मृतिकी आचार-मर्यादा मेरी श्रुतिके प्रमाणसे भिन्न न हो ।

दिदा—[उठती हुई] अच्छा, खड़ी रह, चुडैल !

[मागन्धी भागती है फिर हाथ बांधे लौट आती है]

मागन्धी—क्षमा, स्वामिनि, क्षमा !

दिदा—आ, मागन्धी, ले लिख ले अपनी श्रुतिके अनुसार स्मृति, नये

आचारोसे मुखरित । लिख—रानी निर्वर्ण होती है, वर्णोंसे परे,
जिससे न कोई वर्ण उसे दूषित करता है न उससे दूषित होता है ।

मागन्धी—कि खस उसके लिए उतना ही ग्राह्य है जितना ब्राह्मण ।

दिद्दा—प्रतिलोभका निषेध उसके लिए नहीं है, कि सामाजिक आचारकी
साधारण सत्ता उसे नहीं बाँधती, कि महाभूत समाधियोंसे उसका
कलेवर बना है, कि वह वासनाओंको भोगकर उन्हें जीर्ण कर देती
है, उनमें बाँधती नहीं ।

मागन्धी—ठहरो, ठहरो, देवि, रोको तनिक अपनी यह प्रवहमान
वाक्यावलि । जरा आचार्य पुरोहितको बुला लूँ ।

दिद्दा—मूर्ख ! यह दिद्दाशास्त्रका पहला अध्याय है, मनु-याज्ञवल्क्यमें नहीं
लिखा है जिसे पुरोहित कण्ठ कर ले ।

मागन्धी—हां तो पत्रवाहककी दूती मैं बनूँ, रानी ?

दिद्दा—वन, मागन्धी, जैसे स्यावाश्वकी रजनी बनी थी, जैसे सिनीवालीका
स्यावाश्व बना था । कह उससे कि रानी वर्णकी खाई लाँघ गई है,
कि तुझे ऊँचे देखनेका, चन्द्रको निहारनेका, उसकी चाँदनीमें नहानेका
अधिकार है, कि चाँदनी डलके कमलवनपर भी उसी वैभवसे
पसरती है जैसे गढ़की काईपर ।

मागन्धी—अच्छा, स्थामिनि, चली तुम्हारा दौत्य सपन्न करने ।

[जाती है]

दिद्दा—[स्वगत] कितनी ऊर्जस्वित प्रशस्त उसकी छाती थी, कितनी
तिराव्यजित उसकी भुजाएँ थी, कितना मादक उसका स्पर्श होगा,
उन कमनीय खसका ।

दृश्य ७

[श्रीनगरका राजमहल । रानीका मन्त्रागार । दिदा तुझके दोनो कन्वे सामनेसे पकडे खडी है । तुझ अब कश्मीरका दण्ड-नायक है ।]

दिदा—दण्डनायक ।

तुझ—निहाल हो गया, देवि, पर तुग कहो ।

दिदा—तुम अब कश्मीरके दण्डनायक हो, सेनाका भार धारण करते हो । राजपुरीके मैदानमे असाधारण शौर्यका प्रदर्शन कर चुके हो, मेरी विज्ञप्ति और अपने पराक्रमसे तुमने यह पद पाया है । कौन तुम्हारी उपेक्षा कर सकता है ? तुम्हारी वीरताका अपमान भला कौन करेगा ?

तुझ—वीरताका मान, रानी, ललनाके सामने नतमस्तक होनेमे है । शौर्य-से लालित्य बडा है । मैं तो वैसे भी तुम्हारा अकिञ्चन दास हूँ । तुम्हारे प्रसादसे मेरे भाग्यका उदय हुआ है । ससारके लिए चाहे दण्डनायक होऊँ, तुम्हारे लिए, देवि, मात्र तुग हूँ । और कामना है कि जीवन भर वस तुग बना रहूँ ।

तुम जितने तुग हो, मेरे राजा, उतनी ही मैं दिदा हूँ और तुम्हारे सामने केवल दिदा हूँ । न स्वत्वका कोई लोभ है, न शालीनता-की कोई बाधा, वस नारी मात्र हूँ, मूल नारी मात्र, जैसे तुम पुरुष हो, मूल पुरुष मात्र ।

तुझ—नही जानता, देवि, मैं क्या हूँ । जैसे स्वप्न देखकर जागा और स्वप्न सच हो गया । विश्वास नही होता पर ये कमनीय भुजलताएँ साक्षी है कि तुम मेरी हो, और मैं सन्तुष्ट हूँ । कोई कामना, कोई याचना अब शेष नही रह गई ।

दिद्दा—जाओ, तुम पुछकी घाटी तुम्हे पुकार रही है । जब तक उदयरज जीवित है, मेरा सिंहासन और तुम्हारा प्रणय निरापद न होगा । एक बार मेरे मायकेके तेजस्वी लोहर भी जान ले कि दिद्दाका प्रसादलब्ध खस उसकी सनकका परिचायक नहीं अपने अधिकार से वीरवर है । जाओ, दण्डनायक तुम, जाओ । जयश्री तुम्हारे इस सरपेचकी छायामे अभिराम उतरे ।

[तुझका सरपेच घूम लेती है ।]

तुझ—[जाता हुआ] न मैं राजलक्ष्मी जानता हूँ, देवि, न शौर्यकी शालीनता । जानता हूँ मात्र दिद्दाकी सुरभित सास जिससे मेरे नथने भरे हैं, और रोम जो उसके स्पर्शसे पुलकित हैं । महत्त्वाकांक्षा राजलक्ष्मीको सरपेचकी छायामे उतारनेकी नहीं, उस मुसकानकी चाँदनीमे नहानेकी है जो मेरे लौटनेपर मेरी एकान्तकी सखी मेरे स्वागत पथमे बिखेर देगी । विदा, देवि सप्ताह भरके लिए विदा ।

[तुझ चला जाता है । बाहर घोड़ेकी टापोंकी आवाज होती है । मागन्धी तुझके जानेकी आहट पाकर जो रानीके पास लौटती है तो देखती है कि कठोरहृदय दिद्दाकी आँखोंमे आँसू भरे हैं । मागन्धी चुपचाप लौट जाती है और दिद्दा महलकी खिड़कीसे तबतक प्राङ्गणकी प्राचीरोकी ओर देखती रहती है जबतक तुझका ऊँचा मस्तक उसकी ओट नहीं हो जाता और तब उसकी आँखोंके आँसू उसके भरे श्वेत अरुणाभ कपोलोपर टुक टुक पड़ते हैं]

दृश्य ८

[कई वर्ष बाद। दिहा मरण-शय्यापर पड़ी है। उसकी तखियाँ शय्यागारके बाहर निरन्तर अपने बहते आँसू पोछती जा रही हैं। और बाहर महलके आँगनमें सामन्त और मन्त्री दुःख और सुखकी मिश्रित भावनाओंमें एक दूसरेको हेर रहे हैं। एक ओर दिहाके भाई लोहरराजका पुत्र संग्रामराज शान्त पड़ा है, उस सवादकी प्रतीक्षामें जो एक नाथ उसे दुःखी और सुखी करनेवाला है। दिहाके प्रसादका भागी होनेसे वह उसके प्रति अनुरक्त हुआ है, उसके मरणसे दुःखी होगा, पर उसकी मृत्युमें उसका भविष्य कश्मीरके आकाशपर जो छा जानेवाला है वह उसके सुखका भी कारण है। दिहाकी शय्याके पास केवल तुङ्ग है। उसके सुपुष्ट कन्धे नगे हैं, और उसके काले कुन्तल उन कन्धोपर हिल रहे हैं। पलकें उसकी आँसुओंसे बोझिल हैं। घुटनोंके बल बैठा है।]

दिहा—[कठिनाईसे आँखें खोलती हुई] आह ! कहाँ हूँ ?

तुङ्ग—यहाँ, देवि, अपने शयनागारमें, मेरे सामने । [तुङ्गको देखती है]

दिहा—तुङ्ग, अब देखा नहीं जाता, आँखें पथरा चली हैं, शक्ति क्षीण हो चली है ।

तुङ्ग—आधी शताब्दी तक इन आँसूके तेवरसे कश्मीरका शामन किया है, बड़े-बड़े पुरुषसिंह इनका तेज न सम्भाल सकनेके कारण मूर्छित हो गये हैं। अब इन्हें देखना ही क्या है, देवि ? केवल यह तुङ्ग अन्धा हो जायगा जिसके मार्गका प्रकाश ये रही है । [तुङ्गकी आवाज भर्रा जाती है]

दिदा—[सहसा भारी पलकोसे झपी आँखें प्रयाससे सविस्तर खोलती हुई—] तुग, साहम करो । नारीका साहस तुमने जीवन भर देखा है । अब उसकी मृत्युके समय साहम न खोओ । दिदाने यदि कभी घृणा की है तो केवल दुर्बलतासे । कायर उसकी छाया नहीं छू सका है, दर्प उमके तेवरमें सदा अँगड़ाता रहा है । मनमें दुर्बलता न लाओ । कश्मीरका यह मण्डल साम्राज्यकी परिधि तक फैला तुम्हारे लिए तुम्हारे ही खड्ग द्वारा अर्जित कर दिया है, इस पराक्रमसे जीती हुई अनमोल धराको भोगो, केसरकी नई फूटती कोपले तुम्हारे चरणके नखोंको रग दे ।

तुझ—कश्मीर मण्डलका वैभव, दरदो और तुखारोका आत्मसमर्पण, राजपुरी और पुच्छकी विजय, भोटो और लदाखियेका आज्ञाकरण किस अर्थके, जो उस ऐश्वर्यकी रानी ही न रही ? तुगका वैभव उसकी आकाक्षाके साथ ही, तुम्हारे साथ ही, तिरोहित हो चला । अब जीनेकी साध नहीं, सखि, अब जो मनमें है उसे काश तुम्हारी अनुमतिसे सम्पन्न कर पाता ।

दिदा—वह नहीं कर पाओगे, तुम । जिओ और साधसे जिओ । और जानो कि सदाचार और व्यसन एक ही पौधकी दो टहनियाँ हैं, मनुष्य ही दोनोंका साधक है, मृत्यु उन दोनोंका विराग है ।

तुझ—कुछ कहोगी, रानी ?

दिदा—कुछ नहीं, राजा, मित्रा इसके कि सुखसे मर रही हूँ । दिलका कोई अरमान बाकी नहीं, कोई कामना शेष नहीं जो लिये जाती हूँ । जीवनको जीवनकी तरह भोगा है, निडर होकर सुकर्म और कुकर्म दोनों किये हैं, और भयसे विरहित जा भी रही हूँ । और अब तुग मेरा निरतनिक उठा कर अपनी उम ऊर्जस्वित छातीपर रख लो जिसके रोम-रोमने मुझे सदा अपनी ओर खींचा है ।

[तुझ रानीका मस्तक छातीसे लगा लेता है । उसकी आँखोंसे
आँसुओंकी धारा निरन्तर वह रही है ।]

दिदा—तुझ ।

तुझ—[भर्रायी आवाजमे] दिदा ।

[वह आखिरी आवाज है, उसका नाम, जो उसके कानमे पडती
है, और दिदा दम तोड देती है ।]

गोपा

दृश्य १

[रोहिणीका तट । तेजीसे आता हुआ सवार घोड़ेकी रास खींच घोड़ा रोकता है । तीन लड़कियाँ देवदहके हरे लहराते धानके खेतोसे लौट राजमार्गपर जा रही हैं । सहसा घोड़ेके पास आ-जानेसे डरकर आपसमें चिपट जाती हैं ।]

सवार—[घोड़ा रोकता हुआ] क्षमा, देवियो, क्षमा ! उद्धत अश्वको क्षण भरमें सम्हाल लूँगा । आश्वस्त हो । असयत वेगके लिए लज्जित हूँ । बल्गा टूट गई थी, जिससे इसे सम्हालना कठिन हो गया । आश्वस्त हो ।

[तीनों एक-दूसरेसे अलग होती सवारको देखती हैं, बोलतीं नहीं ।]

सवार—अश्वके आवेगमें अभिवादन भूल गया, क्षमा करेंगी । अभिवादन । शाक्य सिद्धार्थ गौतम अभिवादन करता है ।

[तीनों नाम सुन चकित हो सुन्दर तरुणको देखती रह जाती हैं । परस्पर देखने लगती हैं ।]

एक कुमारी—स्वागत, शाक्यकुमार, स्वागत ! शाक्य सिद्धार्थ गौतमका देवदहमें स्वागत ।

सिद्धार्थ—[घोड़ेसे उतरता हुआ] अच्छा, देवदहकी हैं देवियाँ । यशस्वी कोलियोकी कीर्ति ही इस मात्रामे कातिमती हो सकती है । किम् कुलकी है, देवि, भला ?

वही—हाँ, हम तीनों देवदहकी ही हैं । यह है महाबलकी कन्या अनुराधा, यह दण्डपाणिकी गोपा, और मैं हूँ धीरोदनकी मग्धरा । जाना ?

सिद्धार्थ—जाना, शुभे, आप धीरोदनकी स्रग्धरा हैं, यह दण्डपाणिकी गोपा, मेरी मातुल कन्या, और यह महाबलकी अनुराधा ।

अनुराधा—[गोपासे धीरे-धीरे] देख, देख ले, गोपे, अपने बन्धुको । अभी उस दिन बात आई थी ।

स्रग्धरा—दूरसे आ रहे हैं, कुमार गौतम ?

सिद्धार्थ—दूरसे आ रहा हूँ, देवि, अन्नकूटसे । वहाँ गायोका मेला था । तनिक देर हो गई ।

गोपा—[सकुचाती हुई अनुराधासे] रावे, पूछना इनमें, मन्व्या हो आई, रात देवदह न रुक जायेंगे ?

अनु०—कुमार

सिद्धार्थ—मुन लिया, देवि, कल्याणीने जो पूछा मुन लिया । [गोपा और भी सिकुड जाती है] [गोपासे] नहीं देवि, मुझे जाना ही होगा, अविलम्ब । सुना है, कोलियो और शाक्योंमें रोहिणीके जलके लिए विवाद छिड़ गया है । एक बार जल बाँटा था, मेरा बाँटना दोनोंको अभिमत है । यदि समयमें न पहुँचा तो न जाने क्या कर बैठे । आमन्त्रणके लिए आभार ।

गोपा—[घबडाई-सी] इतनी जल्दी ? रोहिणी पार करते ही अँवरेरा हो जायगा । [अपनी बातसे ही लजा जाती है]

स्रग्धरा, अनु० [एक साथ]—रुक जाइए न ! मानव्य गगन रक्तपीत हो गया, अब प्रकाश डूबने क्या देर लगती है ? कपिलवन्तुका मार्ग पहाड़ी है ।

सिद्धार्थ—[गोपाकी ओर देखता हुआ] रोहिणी पार करने क्या देर लगती है, कल्याणि, जब उमका घाट जाना है ? और विज्याम करे, यह मेरा अमयत तुरङ्ग पलभरमें रोहिणी पार कर जायगा । फिर चाहि मानव्य गगन रक्तपीत हो जाय, प्रकाश जल्दी डूबता

नही । मार्ग पहाड़ी निश्चय है, पर जाना हुआ है, मेरे अश्वका परिचित है । चला, देवियो, अभिवादन । मातुल दण्डपाणिसे मेरा नमन कहना, कल्याणि गोपे ।

[तीनों सिर झुका लेती है । घोड़ा एड लगाते ही बढता है । रानें पार्श्वपर कस जाती हैं, घोड़ा जैसे हाथ भर धरासे ऊपर उठ जाता है ।]

सिद्धार्थ—[दूरसे] जलम्य लाभ हो, देवि । आकाशके तारे धरापर उतर आये ।

स्रग्धरा—यह तेरे लिए है, गोपे ।

गोपा—अरी चल । मेर लिए हैं । अभी तो सटी जाती थी, और अब 'यह तेरे लिए है ।'

प्रनु०—और नही क्या, गोपे ? पिताने क्या कहा था ?—तेजस्वी, करुणा-कर, कान्त । आज जाना, उनका कहना कितना सही था ।

स्रग्धरा—कितना सही था उनका कहना, सच ।

गोपा—पर यह शाक्य-कोलियोंके प्रतिदिनके विवाद । जैसे इन्हे कुछ और करना ही न हो । अरे जलकी धारा भी किसीकी होती है, मलयका झोका भी कहीं बँधकर रहता है ?

स्रग्धरा—नही गोपे, न तो जलकी अविरल धारा ही किसीकी होकर रहती है, न मलयका झोका ही बँधकर रहता है, और न कोलिय बालाका अल्हड यौवन ही प्रतिद्वन्द्व मानता है ।

गोपा—अच्छा, वन कर सम्हाल अपनी प्रगल्भता ।

स्रग्धरा—विध गई, रानी ।

गोपा—विध गई तू, मैं तो जैसी-की-तैसी हूँ ।

स्रग्धरा—अरे विध तो गई वह जो महमा चुप हो गई है—अनुराधा ।

प्रनु०—[चौंकर] अरे नही । जाना, मैं क्या सोच रही थी ?—कि

यही है जिसे माया नहीं व्यापती ? माया न व्यापे चमे जो कुरूप हो, जिसका अन्तर नीरस हो । कुमार तो कितना रम्य, कितना सरस, कितना शिष्ट है । गोपे, ऐसा तरुण साथ हो तो वरुण की तुला काँप जाय ।

[प्रस्थान]

दृश्य—२

[दण्डपाणि कोलियका प्रासाद । उसकी पत्नी रोहिणी परिचारिकाओंसे घिरी कूटे हुए धानको कूत रही है । गोपा सखियों सहित आती और चली जाती है । रोहिणी धीरे-धीरे प्रासादसे निकल उसकी अमराइयोमें जाती है जहाँ भूला पडा है, खाली, क्योंकि भूलना खत्म हो चुका है ।]

रोहिणी—[ऊँची आवाजमें] गोपा ।

[कोई उत्तर नहीं मिलता ।]

रोहिणी—अरी घरा । रावा ।

[उत्तर नहीं]

रोहिणी—कहाँ जा बैठी तीनों ? अजिरा । ओ अजिरा ।

अजिरा—आई, स्वामिनि । [आती है]

रोहिणी—ये किधर भटक गई, तीनों ? जरा देय तो ?

अजिरा—अभी तो यही थी, इन कदली-वाडोंके पीछे । गोपाका प्रमाणन हो रहा था, मैं उधर भटक पड़ी थी । अभी देयती हूँ ।

रोहिणी—हाँ, देख तो तनिक गोपाको ।

अजिरा—गोपा तो यह रही, स्वामिनि ।

[गोपा आती है। वासन्ती शृंगार किये। पीछे दोनों सखियाँ हैं।]

गोपा—आ गई, अम्ब, बुलाया मुझे ?

रोहिणी—हाँ, जाते, देख, तनिक इधर आ, पास बैठ जा।

[तीनों बैठ जाती हैं, शादल भूमिपर, कदलियोकी भुरमुटसे बाहर।]

रोहिणी—गोपा, यह चल नहीं सकता।

गोपा—क्या नहीं चल सकता, अम्ब ?

रोहिणी—यही, सिद्धार्थसे सवन्ध।

रुग्धरा—क्यों, अम्ब, चल क्यों नहीं सकता ?

अनु०—कुमार गौतम-सा सुयोग्य शाक्योमे, कोलियोमे, ऐक्ष्वाकुओमे दूसरा है कौन, अम्ब, जो नहीं चलेगा ? गोपाका जी न तोड़ें, अम्ब।

रोहिणी—योग्य-अयोग्यकी बात नहीं, राधे। वैसे तो कुमार आकाश-कुसुम हैं। आभिजात्यमे, शक्तिमें, सौन्दर्यमें, गीलमे अनुपम—मायाका ही तनय है न। जानती नहीं क्या ? देखा नहीं बहुत दिनोंसे, पर सुना तो सब कुछ है। पर—

रुग्धरा—फिर क्या, अम्ब ?

रोहिणी—देख धरा। सुना है, विरवत है। कपिलनगरके पूर्वद्वारपर पुष्करिणी है, उसके तीर जामुनका वृक्ष है। वस उसीके नीचे बैठा कुछ गुना करता है। और कालदेवलकी वाणी क्या किसीसे नहीं सुनी ?

अनु०—क्या, अम्ब ?

रोहिणी—कालदेवलने वाणी कही थी—प्रजापतीसे मैंने सुना था, फिर गोपाके पिताने भी कही—यदि मसारमे टिक सका तो चक्रवर्ती, न टिका तो परिव्राजक। कहो, कैसे करूँ ?

रुग्धरा—पर कुमार तो नमारसे विरवत नहीं। सुना है, ऋत्वनुकूल

विविध प्रासादोमे रमण करते हैं, आखेट और धनु-व्यायाम करते हैं । अभी उमी दिन देखा था—विरकिनका एक लक्षण न था तन-पर, न वाणीमे, न चेष्टामे ।

अनु०—और तीनोको पैसे नयनो घायल करते गये ।

स्वधरा—तुझे ही किया होगा, राधे, घायल, चुप रह ।

अनु०—मैं तो कहती हूँ, अम्ब, कुमारको छोड़ दो देवदहमे घड़ी भर, और देवदहके प्रामाद रिक्त न हो जायें तो कहो । जिवर-जिवर कुमार जायेंगे उधर-उधर कोलिय कन्याओका परिवार चल पड़ेगा ।

स्वधरा—नही, अम्ब, कुमारकी दृष्टि एकाग्र थी, गोपापर लगी । और जो वह दृष्टि एक बार देख लेता, वह ललचाई, मयत पर अनुरक्त, बार-बार लौटती दृष्टि, उसे फिर प्रव्रज्याका भय नहीं रहता ।

अनु०—अम्ब, शका न करो । सीपो गोपा कुमारको, और मैं कहती हूँ, गोपाके रूप-वैभवसे स्वयं प्रव्रज्याको काठ मार जायगा, कुमार तो प्रासादमे बाहर न निकलेगे ।

रोहिणी—गोपा ।

गोपा—अम्ब ।

रोहिणी—बोल, कुछ तू भी कह न ।

गोपा—क्या बोलूँ, अम्ब, क्या कहूँ ?

रोहिणी—तूने भी तो प्रव्रज्याकी बात तातमे मुनी है ?

गोपा—प्रव्रज्या क्या जीवनमे परे है, अम्ब ? क्या गार्हस्थ्यकी परिणति ही प्रव्रज्या नहीं है ? उसमे फिर भय क्या ?

रोहिणी—भय प्रकृत प्रव्रज्यामे नहीं, जाते, अकाल प्रव्रज्यामे है ।

गोपा—फिर, सुनो, माँ, परागका एक कण समूची वनस्थलीको कुसुमभागमे भर देता है, एक साँसमे उनचामो पवनोका वेग ममाया रहता है, मयोगका एक क्षण प्रव्रज्याके कल्पको लाँच जाता है । मोह प्रव्रज है, अम्ब, अनुराग फलता है ।

रोहिणी—अनुराग फले, गोपा ! तातका सदेह-निवारण करूँगी । तातके भयको जीत सकी तो कपिलवस्तु ब्राह्मण भेजूँगी । मान लेगे तात, जाते, तुम्हारी कामना । जाओ, निश्चिन्त हो ।

[तीनों जाती है—गोपा शान्त गभीर क्लान्त, सखियाँ किलकती, एक दूसरीसे चिपटती, गोपाको चूमती—भेंटती ।]

रोहिणी [अकेली, अपने आप]—फले तुम्हारा मोह, गोपा ! तुम्हारे रूपके मपुट कमलमे कुमारका वैराग्य भ्रमर वनकर मुँद जाय । और हे कुलदेवता, दिनमणि दिवाकर, गोपाका अनुराग कुमारके रोम-रोम मे भिन जाय, पोर-पोरमे पैठे, वाणीमे पल-पल फूटे ।

[जाती है]

दृश्य ३

[कपिलवस्तुमे सिद्धार्थका ग्रीष्म प्रासाद । परिणयके पश्चात् । गायन-वादनसे कमरा अभी भी गूँज रहा है यद्यपि स्वर-ताल थम गये हैं । कुमारका सकेत पा गायिकाएँ-नर्तकियाँ उठती हैं और चुप-चाप चली जाती हैं । कमरा सूना हो जाता है, केवल अनुरागभरा । अब वहाँ वस दो हैं—कुमार और गोपा । दोनों बाहर छतपर निकल आते हैं ।]

सिद्धार्थ—गोपे ।

गोपा—रमण ।

सिद्धार्थ—कितना स्पृहणीय है शरद् ।

गोपा—नितान्त मदिर ।

सिद्धार्थ—आकाश कितना निर्मल है, गोपे, कितना निरभ्र, कितना सूना, नार्थक शून्य ।

गोपा—पर सर्वथा सूना भी नहीं, रमण, रजनप्रतानकी भाँति मेवण्ड जहाँ-तहाँ गतिमान है । पवन इन्हे अपने पगोपर तीलता बहता जा रहा है । अकेला कोई नहीं रहता, प्राण ।

सिद्धार्थ—नहीं, प्रिये, अकेला कोई नहीं रहता—आकाशके साथ घरा है, जैसे पर्वतके साथ जलधारा, जैसे जलधाराके साथ नवल गफगी, हममियुन । हाँ, पर—

गोपा—‘पर’ क्या, सुमन ?

सिद्धार्थ—पर क्या आकाश सूना नहीं है, प्रेयसि, घना सूना ?

गोपा—चन्द्र कितना सुदर्शन है, प्रिय, अभिराम वलयमे वेष्टित त्रिम्ब दिगन्त-व्यापी चन्द्रिकाका आराध्य ।

सिद्धार्थ—सही, गोपे, चन्द्र सुदर्शन है, वलयवेष्टित उमका त्रिम्ब भी अभिराम है, जैसे उमकी चन्द्रिकामे दिगन्त भी आलोकित है, आकर्षक, किन्तु—

गोपा—‘किन्तु’ क्या, रमण ? विकल्प कैसा ?

सिद्धार्थ—किन्तु, गोपे, गगन गम्भीर है, अनन्त गहरा, आश्रयहीन । चन्द्रधर, नक्षत्रधर, पर स्वयं निराधार, गतिहीन, सूना ।

गोपा—जिमकी चाँदनी चराचरको परमकर निहाल कर देती है, विषमको स्निग्ध, वह भला सूना कैसे, मनहर ?

सिद्धार्थ—देखो, प्रिये, उन नक्षत्रोंको देखो, उन दूर एकान्तमें जिलमिलाने तारोंको, जैसे गगनके मूनेपनमे अवमन्न हो रहे हैं, अयमादगे विकल निरवलम्ब ।

गोपा—ज्योतिष्मती रजनीका यह प्रभाव है, वरेण्य, शारदीय विभावरीका । वरना, याद करो, कितने तारे, कितने नक्षत्र इस कीमती आभाके नीचे गतिमान हैं । मोचो, गगनगंगाकी उन अनन्त नीटारिकाओंको जिनके नीचेमे होकर मन्दाकिनीका धवल मार्ग चला

गया है । आलोडित जीवन जो ज्योतिकी चकाचौधसे मात्र कुण्ठित हो गया है ।

सिद्धार्थ—[धीरे-धीरे सोचता-सा] जीवन-ज्योतिकी चकाचौधसे कुण्ठित । ठीक ही कहा, गोपे, जीवन ऐसा ही है, स्पन्दित, आलोडित, पर प्रकाशसे कुण्ठित, अज्ञानान्धकारसे आवृत, क्षणभंगुर ।

गोपा—[कुछ सस्वर] जागो, जागो, प्रिय ! अचेतनका खूँट न पकड़ो । देखो, इस नाचते निसर्गको, इस रूपमण्डिता धराको, कुसुम-निचयसे लदी वनस्थलीको, चाँदनीसे खिलखिलाती शैलमालाकी हरित श्यामल-शाद्वल-मेखलाको देखो—

सिद्धार्थ—[सकुचाता हुआ] लज्जित हूँ, गोपे, शरद्का यह वैभव मैंने अपने असमयके प्रलापसे दूषित कर दिया । क्षमा करना, मैं इस वैभवके प्रति विमन नहीं हूँ । और तुम्हारा जीवनके प्रति उल्लास तो मुझे चिरन्तन प्रिय है । वोलो, मानिनि, निसर्गके प्रति, उसके रजित प्रसारके प्रति मेरा आदर है—

गोपा—[मुसकराती हुई] देखो, फिर, मेरे अभिनव सर्वस्व, देखो इस नदिता धराको, काशकुसुमोंसे सजी, पके शालिका पीत परिधान धारे इस शरद्की नववधूको ।

सिद्धार्थ—देखता हूँ, प्रिये, अभिनव शृङ्गार किये मुग्धा धरित्रीको—

गोपा—और देखो होंकी पक्तिसे सनाथ रोहिणीकी रजत धाराको, मरालोसे कपित सरके कमलोको जो अपनी नालोपर मधुपकी नाई डोल रहे हैं । कुसुमभारसे झुके सप्तच्छदोंसे श्यामल उन वनाती-को देखो, नगरके उन उपवनोको जिन्हें मालतीकी लताओंने अपने उजले फूलोंसे उजागर कर दिया है ।

सिद्धार्थ—देखता हूँ, गोपे, मरालगतिका रोहिणीकी रजतधाराको देखता हूँ ।

तुम्हारी नामाकी मंदिर मुरभिमे जाग्रत अभिनव पद्मोको देगता हूँ, गरदकी समूची पुष्परागिको देखता हूँ ।

गोपा— वन्वूक और कोविदारको देखो, कुटज और नीपके कुमुमनिचयको, सुरभित शेफालिकाकी अमित रागिको ।

सिद्धार्थ—रागाहण निसर्गकी मानस-मराली, रम्य है यह गरदका उत्कर्ष, रम्य है यह मालतीसनाथ हिमालयका वनप्रान्तर, यह कुमुम-प्रवालोमे लदी श्यामा लताओमे ढका शैलभिन्न महाकान्तार ।

गोपा—अरे उन काञ्चन कुड्मलोको देखो, मेरे प्रबुद्ध प्रियतम, उन प्रफुल्ल नीलोत्पलोको, उन नाचते अरविन्दोको, उन मरकत मणिकी आभासे अविरल बहती वारिवाराओको, उस मस्मिनवदना चन्द्र-कान्तिको, उस मरीचिमालीकी अविराम वरमती किरणाको—

सिद्धार्थ—वस, वस, माधुरी, मद गया इस मंदिर भाव-सन्धारमे । गरद-का वैभव जितना बाहर प्रकट है उसमे वही प्रचुर तुम्हारे मानसमे निहित है । लक्ष्मी शशाङ्कको छोट तुम्हारे मुगाम्बुजमे जा बसी है, हँसोका कलरव तुम्हारे मणिनूपुरोमे बज चली है, वन्वूककी अम्ण कान्ति तुम्हारे होठोको लालायित कर रही है । मेरा प्रमदायित मानस विकल हो रहा है, मुग्ध, मोहायित, चलो ।

[गोपाके कन्धेपर अपना हाथ रख देता है]

गोपा—[कन्धेपर रखे सिद्धार्थके हाथपर अपना हाथ रगती हँसती हुई] चलो, मेरे मानसके मधुर मराल । मेरे चिन्तनके नित्य काम्य । भावनाके सिद्धार्थ । चलो । [दोनों कमरेमे बने जाते हैं ।]

दृश्य ४

[सिद्धार्थका वसन्त प्रासाद । प्रासादकी अटारीमें, वातायनके सामने बैठे सिद्धार्थ और गोपा । बाहर देखते हुए वातलिप-
में रत]

गोपा—धरापर पराग वरस रहा है, सौम्य, धरित्री अघा रही है, पोर-पोर खोले आनन्दविभोर है ।

सिद्धार्थ—सौरभसे वातावरण महमह कर रहा है, प्रिये ।

गोपा—आमकी मजरियाँ अपने कोष खोले सुरभि लुटा रही है । गन्धवाही पवन उस गन्धसे पागल डोल रहा है, मञ्जरियोपर मँडराते मधु-
कर मधुकरियोसे अनायास टकरा जाते हैं, वीराये चक्कर काट रहे हैं ।

सिद्धार्थ—स्वयं वीरे आमोने निश्चय चराचरको वीरा दिया है । उन कोयलोको तो देखो तनिक—

गोपा—[लजाती हुई, चुपकेसे देखकर] प्रणयका सम्भार है । ससारसे दोनों जैसे अलग है, अकेले ।

[कोयलकी कूक कू ! कू !]

सिद्धार्थ—लो, कामने दुन्दुभी वजा दी ।

गोपा—कितनी मधुर है कूक ।

सिद्धार्थ—टेर रहा है, सङ्गिनीके समीप होते भी ।

गोपा—कितना कषाय है कण्ठ उसका ।

सिद्धार्थ—प्राय द्विधाभिन्न । मजरीका स्वाद कषाय होता है, कषाय-
स्वादु । देखो, कोकिलाको कैसे अपनी खाई हुई मजरीका अश
चुगा रहा है, चोच-से-चोच मिली है ।

[गोपा लजा जाती है । सिद्धार्थ उसका झुका हुआ मस्तक

चिबुक पकड कर उठा देता है, गोपा अधबुली आँखों देखती है,
कोकिल-कोकिलासे आँखें चुराती हुई ।]

सिद्धार्थ—वनस्थलीमें माधव नाच रहा है । जानती हो प्रिये, वमन्त
कामका सेनानी है ?

गोपा—जानती हूँ, नाथ, मधुनायकके दिये उपकरणोंमें ही तो पुष्पवत्याके
परिच्छेद वनते हैं—

सिद्धार्थ—हाँ, ईखसे धनुषका दण्ड, भीरोसे उमकी डोरी, पंच पुष्पोंमें
पंचवाण ।

गोपा—[धीरेसे] वमन्त उमका सेनानी, कोकिल उसके वैतालिक, चारण ।

सिद्धार्थ—मारकन्याएँ उसके प्रहारके अम्र ।

गोपा—कितनी अभिराम भावुकता है, कितनी अभिमत कवि-कल्पना ।

सिद्धार्थ—पर क्या यह मात्र कविकल्पना है ? जीवनका पर्याय नहीं ?
उसका एकान्तिक सत्य नहीं ?

गोपा—एकान्तिक सत्य तो तुम जानो, मेरी उन्मद भावनाके एकान्तिक
सर्वस्व । मैं तो मात्र तुम्हें जानती हूँ । तुम्हारे उम रसाकुल पिण्डों,
रसरजके स्पर्शमें स्निग्ध, परागमें अभिषिक्त तुम्हें ।

[सिद्धार्थ कुछ शिथिल हो जाता है ।]

गोपा—क्यों, विमन कैसे हो चले, मधुमानस ?

सिद्धार्थ—नहीं, विमन कहाँ, गोपे ?

गोपा—क्यों नहीं, कान्ति जैसे नहमा मलिन पट गई है, चन्द्रविम्बके गामनेमें
जैसे मेघवण्ड निकल गया है । वात क्या है, स्वामिन् ?

सिद्धार्थ—वात कुछ नहीं, रानी । वस तनिक अमावसान हो गया था ।
क्षमा करना, अब पूर्ववत् उत्तम है, तुम्हारी व्यजनाके प्रति उन्मग्न ।

गोपा—नहीं, वाणी चिन्ताकुल है । प्रयत्न करके भी बदलती प्रगट नहीं

वना पाते, चेष्टाएँ विकृत हैं । बोलो, प्रिय, बात क्या है ? मधुके झरते मकरन्दके बीच, वरसते अनुरागके बीच यह विराग कैसा ?

सिद्धार्थ—सही है, गोपे, क्षमा करना । नि सन्देह अन्तर्मुख हो चला हूँ । मानस सहसा उद्विग्न हो उठा है । यह वनस्थलीमें नाचता माधव, यह निसर्ग वैभव, यह इन सबसे मूल्यवान्, सबसे अभिराम, सबसे कमनीय तुम्हारी देवदुर्लभ काया, सब सहसा नेत्रोंसे परे हो गये । विचरे निदानकी सहसा याद आ गई । लगा,

[गोपाके आँसू बहते जा रहे हैं]

यह मधु भी रित जायगा, जीवन मुरझा चलेगा, और साथ ही तुम्हारी यह अनुपम काया भी धीरे-धीरे पीली पड़ जायगी, इसका अभिनव वनन्त एक दिन

गोपा—[सिसकती हुई] क्या हुआ, प्राणेश्वर, यदि ऐसा हुआ तो ? यह तो प्राणीका धर्म ही है, प्रकृतिका ही धर्म है, इससे रक्षा कहाँ ? इसमें क्षोभ क्यों ?

सिद्धार्थ—और तब एक दिन हमारा वह अनुपम नवजात, हमारी एकान्त ममताकी डोर राहुलपर भी कालका वही कुठाराघात होगा, इस क्षण भी होता जा रहा है । शिशुसे वह बाल होगा, बालसे किशोर, किशोरमें युवा, फिर प्रौढ़, वृद्ध और

गोपा—[सिसकती हुई] हाय ! हाय !

सिद्धार्थ—हाय, आगे सोच नहीं पा रहा हूँ । पर क्या इस जीव धर्मसे छुटकारा नहीं है ? इतना प्राणवान् गतिमान मानव क्या मात्र मिट्टी होकर रहेगा, जड़ धूल ?

गोपा—मत, मत सोचो इस प्रकार, मेरी साधोके राजा । जीवनको सोचो, मृत्युको भूल जाओ, भुला दो ।

[नेपथ्यमें—शिशुकी आवाज़—ओ ! ओ ! उदर, अम्म ।]

सुन लो उस छीनेकी आवाज । जीवन कितना जीव्य है, मेरे प्राण ।
फिर अभिमत जीवन, जैसा हमारा है ।

[दासी प्रायः साल भरके शिशुका हाथ पकड़े कक्षमें प्रवेश करती है, स्वामी-स्वामिनीकी गभीर मुद्रा देख ठिठक जाती है । शिशु माँकी ओर उँगली उठाता उसे खींचता है ।]

शिशु—वो वो—अम्म-तात । वो-वो ।

गोपा—आने दो, शिशुको आने दो, दासी । लाओ उसे ।

[सिद्धार्थ धीरे-धीरे सिर उठाता आते शिशुकी ओर देखता है]

गोपा—[गोदमें शिशुको लेती, छातीसे चिपटाती हुई] मेरे लाल ।
[दासी चली जाती है] मेरे प्राणोंके प्राण । मेरे छीने । वच्चे ।
[सिद्धार्थका चेहरा फिर मलिन हो उठता है, प्रसन्न मुद्रा बनाये रखनेके बावजूद]

गोपा—देगो, मेरे नाथ । मेरे आराध्य, देगो इस अनुपम अजेय शिशुको,
शचीके इस जयन्तको, मेरे प्राणोंके इस मर्मको ।

[शिशु रह-रहकर अम्म । तात । कहता और माँकी जाँघपर हिलता जाता है । फिर माँ और पिताकी चेष्टाएँ देग विमन कुछ चुप-सा हो जाता है । सिद्धार्थ राहुलको निहारता है, फिर धीरे-धीरे माँमें चिपटते शिशुको अपनी गोदमें खींच लेता है ।]

सिद्धार्थ—[भरी गोली आँखोंको पोछता] देगता हूँ इसे, मेरी प्राण ।
देगता हूँ, इस एकान्त तनयको । और काँप जाता हूँ । क्या यह क्षणभंगुर जीवन चिरजीवन नहीं हो सकता ? क्या गम-यौवन, स्वास्थ्य स्थायी नहीं हो सकते ? जीवन क्या मृत्युका ही होकर रहेगा ? पल-पल मिटता हुआ जीवन क्या अजर-अमर नहीं हो

सकता ? क्या उसका निदान कही नहीं ? क्या कही मृत्यु और दुःखका निरोध नहीं ढूँढ पाऊँगा ?

[गोपा निरन्तर रोती जा रही है । राहुल विस्मित है । कभी माँको देखता है, कभी पिताको । फिर अम्म ! अम्म ! करता वरदस माँकी गोदमे चला जाता है ।]

सिद्धार्थ— चिन्तित मैं इसलिए हूँ, गोपे, आकुल इसी कारण हूँ कि किसी प्रकार जीवन-मरणका वह भेद पा लूँ, कि तुम्हारी इस अभिराम कायाको मिटने न दूँ, इसे जोर्ण न होने दूँ, तुम्हारे इस अप्सरा-दुर्लभ आननपर एक भी चिन्ताकी रेखा, एक भी झुरी न आने दूँ । कि इस शिशुका यह शैशव, इसका अनागत यौवन दुःखसे, व्यथासे विकृत न हो उठे । और इसीलिए, गोपे, मुझे जाना होगा । इसी लिए कि तुम्हें सदा देख सकूँ, सदा पा सकूँ, कि राहुलको अमृतत्व ला सकूँ ।

गोपा—[रोती हुई] नहीं, मेरे स्वामी, नहीं । नहीं चाहिए मुझे अजर-अमर जीवन, नहीं चाहिए मुझे शाश्वत यौवन, और न मेरे नयनके इन तारेको ..

[दूटकर रो पड़ती है । शिशु भी सहसा रो पड़ता है । परदा गिरता है ।]

दृश्य ५

[सिद्धार्थ सम्प्रक् सम्बोधिकी खोजमे कपिलवस्तु छोड़ एक रात चले गये । कपिलवस्तुका राजपरिवार, शाक्य-समाज अवसादके वशीभूत हुआ । उसके कुछ महीनो बाद अपने शीतप्रासादमे अनुराधासे वार्तालाप करती गोपा । कक्ष सूना है, विलासके सारे पदार्थ वहाँसे हटा दिये गये हैं । केवल एक ओर वच्चेके खिलौने गजदन्तके आधारपर रखे हैं । वच्चा सो रहा है । गोपा पर्यंकपर

अधलेटी है, उसका वस्त्र आभाहीन है, मुपती कान्ति मलिन है गई है, सूखी लटें एक ही वेणीमें गुंथी जाकर भी निकल कर इपर-उधर भटक पड़ी हैं । अनुराधा पर्यंकके पास ही भद्रपीठ पर बैठी है ।]

गोपा—न जाने कहाँ गये नाथ, राधे, किधर गये ।

अनु०—रोहिणी पार, मावत्थीकी ओर, मल्लोकी ओर ।

गोपा—पैदल ! नगे पाँव ! उनके वे कोमल चरण ।

अनु०—धीर धरो, गोपे, आयेगे मिद्धार्य । स्वामी लीटेंगे ।

गोपा—अब क्या लीटेंगे स्वामी, राधे ! गया कभी लौटा है ? या कहा छदाने ?

अनु०—हाँ, कहा उमने कि स्वामीने अपने भ्रमर व्याम कुञ्जित कुन्तल राट्गसे काट डाले, मूत्यवान उष्णीष और दुकूल उतार दिये, यतीके चीवर माँग पहन लिये और अञ्च कथक्को और उसे अनुग्रहमे देयते चले गये ।

गोपा—नगे पाँव ! जलती धरती, कोमल चरण ! हाय स्वामी !

अनु०—जिसने जीवनको प्राणियोंके हितचिन्तनमें स्वाहा कर दिया उसके नगे पाँव और कोमल चरणका क्या रोना मल्लि ? फिर यदि उनकी वान कहती ही हो तो यह न भूयो कि उनके कोमल गानकी कठोरता भी कुछ कम नहीं । शाख्यो-कोलियोंमें कौन या जो उनके अगोकी कठोरताका माझी नहीं, जो उनमें लौहा ले मरता रहा हो ?

गोपा—मही, राधे, गान कठोर था उनका, उसे शाख्यो-कोलियोंने देगा, दिया उनका उम गानमें भी कठोर था, यह मैंने देगा, दुःसह गहलने देगा ।

अनु०—नहीं, मल्लि ऐसा न कहो । उपायम्भ न दो ।

गोपा—[उलाहनेके स्वरमें आँसू भरकर भारी स्वरमें] उपायम्भ न , राधे ? देखती हो उम अकुरकी, जिसे तानके प्यारकी आवश्यकता

थी, पिताकी निजताकी । उसे उन्होंने क्या कहा ? राहुल ।
विघ्न । कांटा ।

अनु०—गोपे ।

गोपा—कांटा था वह नवजात उनके लिए । उनकी राहका कांटा । कभी किसी पिताने अपने सद्योजातको इस प्रकार नहीं पुकारा । मेरे नवजातका यह स्वागत । [बच्चेके पालनेकी ओर दौड़ उसे चिमटा लेती है] मेरे अभागें राहुल । मेरे अकिञ्चन लाल । [बच्चेको छोड़ देती है, बच्चा आँयें । आँयें । करके करवट बदल सो जाता है । अनुराधा गोपाको सहारा देती लाकर फिर पूर्ववत् पलगपर बैठा देती है ।]

अनु०—नही, सखि, स्वामीका निरादर न करो । ग्लानि बड़ी है, जानती, हूँ, पर उनकी प्रतिज्ञाकी परिधि उससे भी बड़ी है, उद्देश्यका आयाम कही बड़ा है उससे, यह न भूलो ।

[गोपा चुपचाप रोती है]

फिर एक बात और है, गोपे ?

[गोपा उत्सुक हो आँखें उठा सखीकी ओर देखती है ।]

अनु०—स्वामी क्यों गये, तुमने स्वयं एक दिन अनायाम कह दिया था ।

गोपा—क्यों गये, राधे ? क्या कह दिया था मैंने ?

अनु०—गये कि उस भेदको जान लें, उस उपायको खोज ले जिससे तुम्हारा यौवन अजर हो जाय, जिससे राहुलका बढ़ता गात कभी छोड़े नहीं, कभी व्याधियोंका पजर न बने ।

गोपा—आग लगे इस यौवनको, राधे, यमका पाम इस तनको बाँध ले ।

अनु०—पर बात तो यही थी, गोपे ।

गोपा—[तनिक रुककर चिन्ताकी मुद्रामें] बात यह नहीं थी, सखि ।

बात वह विचारी है मैंने, दिन-दिन, रात-रात गुना है उसे ।

हियाको मेकनेवाली बात होती वह, पर वही उम महान् अभियानकी पराजय भी होती । पर बात वह नहीं है, राखे ।

अनु०—समझी नहीं, मखि ।

गोपा—वही तुम्हारी ही बात, उनकी प्रतिज्ञाकी परिधि बड़ी है, उनके उद्देश्यका आयाम बड़ा है ।

अनु०—फिर ?

गोपा—वह मेरी बात नहीं, मखि । होनी भी नहीं चाहिए वह मेरी बात । वह तो जन-जनकी बात है । उनके हियेमे जो दीप बल्ला था उसकी ली तो सबका अन्तर मेकनेके लिए थी, कुछ मेरे ही लिए नहीं । कातरनयना मृगीपर सवाने बाणका उतर जाना, माण-विद्ध क्रीचके जीवनके लिए इतना आग्रह, स्वप्न-चाण्डालक लिए इतनी ममता, क्या सब मेरे ही लिए ? ना, स्वामीकी दृष्टि लोकदृष्टि थी, पारिवारिक दृष्टि थी ही नहीं, परिवारमे जन्मे ही नहीं थे, गार्हस्थ्यकी परिवर्धमे कभी वे बने ही नहीं, गृहस्थ होकर भी ।

अनु०—और इतनी ममता जो तुम्हारे पर थी, वह ?

गोपा—वह माया थी, मखि, मात्र छलना । मदासे उनका यही प्रयत्न था कि मेरे तात्पर्यकी अवहेलना न हो, उसका मुख मुझे मिल जाय । और यह सब केवल मुझे इसी दिनके लिए तैयार करने का प्रयत्नमे था । वे मेरे तात्पर्यके आकर्षणमे कभी नहीं गिरे ।

अनु०—फिर भी, क्या तुम्हें उनका आत्मनिग्रह स्वीकार नहीं है ?

गोपा—है, मखि । स्वीकार है मुझे उनका आत्मनिग्रह । उनकी प्राणिमात्र अनुकम्पा, चराचरपर अनुग्रह, दुर्गियोंके आनिनाशके उपायों का चिन्तन मुझे सर्वथा स्वीकार है, केवल मैं उनके लिए तैयार न थी ।

अनु०—तैयार होनी कैसे ? उनके कह देने मायसे तो नहीं । कैसे उन्होंने मन्त्रेण द्वारा कह देनेमे भी सकोच न किया । जानो, मखि, उग

प्रकारका दुःख, ऐसा वियोग-विरह झेल कर ही जाने तो साध्य हो वरना उसकी प्रतीक्षा तो असह्य हो उठे । आदमी चुक जाय पर प्रतीक्षाका सताप न चुके ।

गोपा—मानती हूँ, राधे, स्वामीका अभियान इसी मात्र आचरणसे सम्पन्न हो सकता था । पर मोह, यह सर्वसोखी मोह । लगता है जैसे हिया फट जायगा । लगता है, जैसे स्वामी आयेगे ।

अनु०—आयेगे स्वामी, गोपे, निश्चय आयेगे, नि सन्देह । धीर धरो । महापुरुषकी अनुवर्तिनी हो, तुम्हारा चरित भी तदनुकूल ही होना चाहिए—महान् ।

गोपा—धरूँगी धीर, राधे । अपने लिए, इस पुत्रक राहुलके लिए, असंख्य जनवृन्दके लिए, जिससे हम सबका कल्याण हो । जगत्का पहले, हमारा पीछे, जिसके लिए उन्होंने अभियान किया है ।

अनु०—साहन, बहिन, साहस ।

गोपा—साहस करूँगी, सखि, कि स्वामीका प्रयत्न फले ।

अनु०—कि दण्डपाणि और शुद्धोदनका पौरुष सफल हो, कि कोलियो और शाक्योके इतिहास स्वर्णाक्षिरोमे लिखे जायँ, कि सतीका यश पतिके दिगन्तवेधी यशको छायामें आकाशमें व्याप्त हो जाय ।

[वच्चा पालनेमें उठकर बैठ जाता है, बोलता है, 'अम्म !' दोनों उधर दौड़ पड़ती है । परदा गिरता है]

दृश्य ६

[कई वर्ष बाद सिद्धार्थ सम्यक् सवोधि प्राप्त कर बुद्ध हुए, तथागत । तथागत कपिलवस्तु गधारे, समूचे सघके साथ । गोपा प्रासादके अपने कमरेमें चुपचाप कुछ गुन रही है । राहुल बाहर दासीके साथ पट्टिकापर लिख रहा है ।]

गोपा—[स्वगत] पीरे-पीरे हृदय । माहम । स्वामी नगरमें पवारे है ।
आज तुम्हारी परीक्षा है । माहम ।

[दामीका प्रवेश]

दामी—देवि, राजा पवार रहे है । देवीका प्रसाद चाहते है ।

गोपा—[तेजीसे उठती हुई] अभिवादन कह, गुणिके, आर्यकी सेवाके लिए उत्सुक हैं ।

[राजा शुद्धोदनका सावेग प्रवेश]

गोपा—अभिवादन, आर्य, गोपाका अभिवादन । [मन्तक झुकती है]

शु०—मम्वि बेटा, मनोरथ फले । मुना तुमने ?

गोपा—मुना, आर्य । मुना कि आर्यपुत्र नगरमें पवारे है । मुना कि पिताके नगरमें भिक्षाटन कर रहे है ।

शु०—मही, कन्ये । पर मनमें ग्लानि न लाओ । अमनुजकर्मा महापुत्रोंके आचरण मनुजोंके आलोच्य नहीं । मैं निद्वार्यका पिता था पर तथागत आज जगत्के पिता है ।

[गोपा आश्चर्यकी चेष्टा करती है । विस्मयसे उसके नेत्र फैल जाते हैं ।]

शु०—बेटा, जब मुना कि मुगत कपिलवन्तुके राजमार्गपर भिक्षा-यात्र लेकर निकल पडे है तब विकल हो दौडा । नामने जाकर पूछा, यह क्या करते हो ? अपने ही पिताके राजमें, राजाके नगरमें भिक्षाटन ? जानती हो क्या उत्तर दिया ? मुगतका शान्त देवदुर्लभ मन्तक उठा, दयाद्र नेत्रोंसे देखते हुए वे बोले—‘राजन्, तुम राजाओंकी शृङ्खलामे जन्मे हो, राजा हो, मैं भिक्षुओंकी परम्परामे जन्मा हूँ, भिक्षु हूँ । मेरे भिक्षाटनमे राजाकी अवमानना कैसी ?’ और बेटा, मेरा मन्तक मुगतके अभिवादनमे झुक गया ।

गोपा—[पुलकित आँसू भरे नेत्रोंसे देखती है] धन्य ! धन्य जनक ! धन्य जात !

शु०—धन्य भार्या !

गोपा—नहीं, आर्य, भार्या कहाँ ?

[आँखोंसे आँसू चू पड़ते हैं]

शु०—अमा करना, देवि ! आकस्मिक मोहने असावधान कर दिया था । पर क्या सुगतको देखने न जाओगी ? देख ले, बेटी, सारा नगर राजमार्गपर उतर पड़ा है, अन्तर तृप्त हो जायगा ।

गोपा—[शान्त गम्भीर सतप्त वाणीमें] आर्य, मैं क्या जानूँ सुगत, क्या जानूँ तथागत ? मेरे तो वस आर्यपुत्र ! और आर्यपुत्र नहीं तो मेरा कौन ?

[गोपाके मस्तकपर हाथ रखते आँखोंमें आँसू भरे शुद्धोदनका प्रस्थान]

गोपा—माहस ! माहस, हृदय ! दिन-दिन गिनते मास बीते हैं, मास गिनते वर्ष । और आज यह दिन आया है जब आर्यपुत्र इधर पधार रहे हैं । पर मैं भला कौन हूँ उनकी ?

[दासीका वेगसे प्रवेश । पीछे-पीछे राहुल]

दासी—देवि, तथागत इधर ही आ रहे हैं । सथागारका गजस्तम्भ पार कर चुके हैं । नि मन्देह इधरमें ही होकर निकलेंगे । द्वारपर चलें, दर्शन करें ।

राहुल—अम्ब, कौन आ रहा है, कौन ?

गोपा—[बैठे जाते हृदयका आवेग रोकते हुए द्वारकी ओर बढ़ती है । राहुल उसके घाँघरेको पकड़ता साथ-साथ सरक चलता है]
कौन आ रहा है, पुत्रक ? क्या बताऊँ, कौन ? चल देखले उसे जो आ रहा है । [फिर स्वगत] सावधान हृदय, दुर्बलता लक्षित

न होने देना । उनके मार्गमें बाधा न डालना । एक आँसू न गिरे, बाणी गयत रहे ।

[नेपथ्यमें तयागतकी जय ! सुगतकी जय ! सम्यक् सबुद्धकी जय ! आगे आगे त्रिचीवर पहने बुद्धका आगमन, पीछे मोगलान और पीछे कुछ दूरपर जनता । गोपा चुपचाप द्वारपर खड़ी है, राहुल माँ का अधोवस्त्र पकड़े है । पीछे दास-दासियाँ खड़ी हैं ।]

गोपा—[धडकते हृदयमें स्वगत] क्या कहूँ ? किस प्रकार अपनेको सम्हालूँ ? कहीं उन्हें छू न दूँ । कहीं धीरज छूट न जाय, ठाढ़म टूट न जाय । हाथ क्या कहूँ ? क्या बोलूँ ? मुझसे क्या वे बोलेंगे ? हे मेरे पितृ और श्वसुर कुलके समग्र देवता, इस अवलाको बल दो, साहस दो, तुम्हीं उसकी रक्षा करना, तुम्हीं उसके एकमात्र माहाय्य हो । [सम्हलकर खड़ी हो जाती है । बुद्ध और मोगलान राजमार्ग पारकर द्वारपर शान्त आ खड़े होते हैं । जनता सड़क पार ही खड़ी रहती है । गोपा हाथ जोड़ नतमस्तक होती है, राहुल भी माँको हाथ जोड़ता देख तयागतके हाथ जोड़ता है, माथा झुका देता है ।]

राहुल—अम्ब, यह कौन है ?

गोपा—[अपलक बुद्धको निहारती] ऐं !

राहुल—कौन है, अम्ब यह ?

[गोपाका अन्तर बालकके प्रश्नसे ग्लानिसे भर जाता है । ग्लानिसे शक्ति आती है, उत्तर देती है—]

गोपा—भाग्यसे पूछ, जात, अपने भाग्यसे पूछ ।

[बुद्ध नेत्र नीचे किये सुनते हैं और चुपचाप भिक्षापात्र देहलीमें गोपाके सामने बढा देते हैं ।]

राहुल—तू चिढ़ गई, अम्ब ? कहती थी न, तात आयेंगे । राजा-दादा कहते थे, तात आयेंगे, ऐसे ही कपड़े पहने ।

गोपा—आर्य ! भगवन् ! कैसे पुकारूँ, नाथ ?

मोगलान—भिक्षा, भद्रे, भिक्षा ! तथागत गृहस्थ नहीं, भद्रे !

गोपा—[घबडाई हुई भी] भिक्षा, भन्ते ? अपने ही घर भिक्षा ?

मोगलान—तथागतका अपना कोई घर नहीं, गेहिनि, सुगत अनागारिक है ।

[बुद्धका हाथ भिक्षापात्रपर दृढतर हो जाता है, स्थिर]

गोपा—[सहसा साहस बंटोरकर] सुगत अनागारिक है, भन्ते ? हाँ, सुगत अनागारिक है । [ग्लानि और क्षोभभरी वाणीमें] गेहिनी तो वस मैं ही हूँ । जीवन मात्र मेरा अमर है, गृहपति विरहित इस गृहिणीका, निश्चय ।

मोग०—शीघ्र, गेहिनी, शीघ्र ! यदि तथागत लौटे तो अनाहार रह जायेंगे ।

गोपा—[घबडाकर] नहीं, भन्ते, तथागतको लौटना न होगा । [फिर बुद्धकी ओर झुककर] भगवन्, बड़ी उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रही थी । आज आये । और जो आये तो इस वेशमें, त्रिचीवर पहने, भोज माँगने । भगवान्को भोज देनेका मुझमें सामर्थ्य कहाँ ? पर दूँगी भोज । और दूँगी अपना वह सर्वस्व जिसका मोल धरा-पर नहीं । [राहुलको बगलसे खींच दोनों हाथोंमें उठाती हुई] यह है भिक्षा, भगवन् ! लो इसे ? मेरे इस अवशिष्ट सर्वस्वको । जन्मके इस राहुलको ।

[बुद्ध भिक्षापात्र मोगलानको थमा अपने दोनों हाथ बड़ा चुपचाप राहुलको गोपाके हाथोंसे ले लेते हैं । गोपाका सचित्त साहस टूट जाता है । ग्लानि व्यग्रमें बदल जाती है । उसके मुँहकी मुद्रा विगड जाती है । राहुलकी ओर देखती कहती है]

गोपा—[तीव्र स्वरसे] राहुल, पितासे अपनी दाय माँग, अपना पितृत्व ।

बुद्ध—मोगलान, राहुलको प्रव्रज्या दो ।

मोगलान—[मस्तक झुकाता हुआ] धन्य तथागत ! अनागारिक भिक्षुके
पाम निवा प्रव्रज्याके दूमरी दाय कैमी ?

जनता—जय ! तथागतकी जय ! राहुल मानाकी जय ।

[तथागत और मोगलानके साथ राहुलका धीरे-धीरे प्रस्थान ।
नागरिकोंकी जय-जयकार ।]

गोपा—[अघरमे देराती हुई] हाय ! यह क्या कर बैठी ? अपना अन्तिम
अवलम्ब भी दे बैठी ? अभागै हृदय ।

[दास-दानियोंका विनम्रता । गोपाको सहारा देकर भीतर ले
चलना । शुद्धोदनका सहसा प्रवेश ।]

शु०—यह क्या, बेटी ? यह क्या मुनता हूँ ? क्या राहुलको सबको दे डाला ?

गोपा—देव ! पिता ! देव !

शु०—मिद्धार्थको तो चुका था, नन्द भी हाथमे निकल गया था । अब
बुढापेकी लफ्डी यही राहुल बचा था, सो उसे भी नियतिने हर
लिया ।

गोपा—सब घट गये, आर्यपुत्र घट गये, पुत्र घट गया, शेष बच रही
अकेली मैं ! प्रारब्ध ! देव !

[बेहोश हो गिरने लगती है । सब दीडते हैं । शुद्धोदन सहारा
देते हैं । परदा गिरता है ।]



लेखक

जन्म—अक्टूबर १९१० ।

कार्य—भूतपूर्व सम्पादक, काशी विश्व-
विद्यालयकी शोध-पत्रिका,
अध्यक्ष, पुरातत्त्व-विभाग प्रयाग
मग्नहालय, लखनऊ, प्राध्यापक,
विडला कालेज, पिलानी,
संयुक्त राज्य अमेरिका और
यूरोपके अनेक विश्वविद्यालयोंके
विजिटिंग प्रोफेसर, यूरोप,
एशिया, अफ्रीका आदिके पर्यटक,
भूतपूर्व डाइरेक्टर इन्स्टिट्यूट
ऑफ एशियन स्टडीज, हैदराबाद ।

सम्पादक—हिन्दी विश्वकोश, नागरी
प्रचारिणी सभा, काशी ।

